खांडेकर साहित्य : ६

सूना मन्दिर

वि. स. खांडेकर

मूल्य चार रुपये

प्रकाशक
रा. ज. देशमुख
देशमुख आणि कंपनी
२२ कसबा, पूना २

● ● ●

अनुवादक
अुपाध्याय
और
माणिकलाल परदेशी

● ● ●

● ● ●

मुखपृष्ठ
दलाल आर्ट स्टूडिओ
बम्बअी

● ● ●

मुद्रक
र. भ. निगुडकर
प्रकाश मुद्रणालय
३९५/४ सदाशिव, पूना २

● ● ●

मराठी

प्रथम संस्करण १९३९
द्वितीय संस्करण १९४५

गुजराती

प्रथम संस्करण १९४८
द्वितीय संस्करण १९५६

तामिल

प्रथम संस्करण १९४२
द्वितीय संस्करण १९४५
तृतीय संस्करण १९५२

हिंदी

प्रथम संस्करण १९५६

मल्यालम

प्रथम संस्करण क़रीब क़रीब आठ साल पहले प्रकाशित हुआ।

अिसी अुपन्यास पर मल्यालम में नाटक भी प्रकाशित हुआ है।

•

चिरंजीविनी

मंदाकिनी की

बाललीलाओं को

•

देवता और देहरा

कितनी मोहक मूर्ति थी वह !

अितनी सुंदर मूर्ति को कहाँ रखें ! भक्तों के सामने यह बड़ी ही जटिल समस्या थी। मूर्ति ने कहा – 'मेरे लिये तो भक्त का हृदय ही स्वर्ग है।'

किन्तु हृदय में स्थित मूर्ति का दर्शन नेत्र कैसे कर पायेंगे ! समस्त भक्तों ने निश्चय किया कि मूर्ति के लिये अेक अनुपम सुंदर देहरा बनाया जाय। कोअी चंदन के काष्ठ ले आया; किसी ने अुस पर नयनमनोहर नक्काशी खोदी। स्वर्ग का अलौकिक सौंदर्य अुस देहरे में संपूर्ण रूप से अवतीर्ण हो गया।

देहरे में स्थापित अुस मूर्ति की नित्य अर्चना होने लगी। देहरे की सुंदरता को वृद्धिंगत करने के लिये मनोरम पुष्पों का चयन करने में भक्तों में प्रतिस्पर्धा होने लगी; अुसकी श्री वृद्धि में सहायक धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजन की सामग्री संचित करने में प्रत्येक भक्त लीन हो गया।

महोत्सव का पर्व आया ! देहरा फूलों से ढँक गया। धूप समर्पण के कारण चारों ओर अनगिनत, अदृश्य, सुगंधित पुष्प खिल अुठे। दीप-शिखाअें तारकाओं से स्पर्धा करने लगीं। पूजन-समाप्ति के अनन्तर, प्रसन्न चित्तसे भक्तजन घर लौटने लगा। लौटते हुअे सब ने अनुभव किया कि अुनका पैर रास्ते में पड़ी किसी चीज़ से टकरा रहा है। हर अेक ने नीचे झुककर गौर से देखा।

कुछ समय पहले देहरे में प्रस्थापित मूर्ति थी वह ! न जाने किसने और कब अुसे देहरे से निकाल कर बाहर फेंक दिया था। भक्तों में से कोअी भी अुसे पहचान न पाया। अुसे पैरोंतले रौंदकर प्रत्येक भक्त आगे बढ गया।

● ● ●

१

अशोक

'साहब,'

चौंक कर मैंने पीछे देखा। चंदू की ओर मेरी निगाह गयी और साथ ही साथ घड़ी की ओर भी। ग्यारह बजकर बीस मिनट। ओफ! लगभग अेक घंटे से अिस खिड़की में मैं खड़ा हूँ। बाहर शरद की स्निग्ध चांदनी खिल जाने पर किसी कवि की अिस तरह तंद्रा लग जाती तो किसी को विस्मय न होता। लेकिन चांद अभी कुछ ही समय पहले डूबा हुआ है, बाहर अंधेरा फैला हुआ है और मैं हूँ मनोविज्ञान का अेक प्रोफ़ेसर। ज़िंदगी में मैंने अब तक कभी कविता की अेक पंक्ति तक नहीं लिखी किसी मित्र के ब्याह के अवसर पर गाये जानेवाले मंगल गीतों की रचना भी नहीं की।...

और शायद अिसी बात पर चंदू दिल ही दिल में हैरान हो रहा होगा। अिस समस्या ने अुसे अुलझन में डाल दिया होगा कि अुसका मालिक घंटों, अंधेरे में गुमसुम खड़ा कर क्या रहा है!

चंदू की ओर देखते ही मेरी नजर ओवलटीन की प्याली पर पड़ी। कुछ समय पहले वह मेज़ पर ओवलटीन रख गया था। किन्तु अंधेरे में झिल-

मिलाने वाले तारों की ओर देखते हुअे, मैं विचारों में अिस तरह खो गया था कि...

कुछ झेंपकर, ओवलटीन की प्याली अुठाने के लिये मैं हाथ बढ़ा ही रहा था कि चंदू ने झट् से वह प्याली अुठा ली। कहा, 'अब यह पीने के लायक नहीं रही साहब ! देखिये न, यह तो बिलकुल ठंडी हो गयी है।'

चंदू प्याली लेकर भीतर वाले कमरे में चला गया। स्टोव की भर्र...भर्र... आवाज भी सुनाअी देने लगी— और अुसी क्षण अेक अजीब सा विचार मेरे मस्तिष्क में कौंध गया।

ताश के खेल में किसी वक्त हाथके राजा रानी जैसे क़ीमती पत्ते भी बेक़ार साबित होते हैं और तुरूप की दुक्की तिक्की बाज़ी मार लेती है। क्या ज़िंदगी भी अिस खेल के समान ही नहीं है ? चौबीस पचीस साल पहले पिताजी अीरान गये, वे वहाँसे दुबारा अेक बार भी हिंदुस्थान नहीं लौटे। किसी मज़दूर के लडके को भी, जिस मात्रा में पिता का प्यार-दुलार नसीब होता हो, अुतना भी प्यार मैंने कभी स्वप्न में तक नहीं पाया। माँ तो मुझे जन्म देने के साथ ही चल बसीं। लेकिन यह चंदू... शनिमाहात्म्य तो यहाँ अटक अटक कर पढ़ता है लेकिन मेरे, ज्वर से ग्रस्त होने पर, डॉक्टर के यहाँ जाने से पहले किसी ओझा पंडित के यहाँ यह दौड़ लगाता है। ... अेक सीदा सादा अनपढ़ व्यक्ति—जंगलों, पहाड़ों से होकर प्रवाहित होनेवाले नन्हे नन्हे सोतों का जल कितना साफ़ और मधुर होता है ! कुछ लोग भी ठीक अैसे ही होते हैं। चंदू की मुझ पर की असीम श्रद्धा-भक्ति और माँ के हृदय को शोभा देनेवाला स्नेह देखा कि पलभर मुझे अैसा जान पड़ता है—जविन की सफलता तो भक्ति में ही है, न कि शक्ति में !

चंदू ओवलटीन ले आया। मैं अुसे पीने लगा। पलभर ठहरकर आहिस्ता से अुसने कहा, "अब कुछ देर लेट जाअिये साहब ! बहुत थक गये हैं आप। आज सभा में लोग लगातार तालियाँ बजा रहे थे...और तब मुझसे रहा नहीं गया। मैंने भी तालियाँ बजाना शुरू कर दिया। आज आपके भाषण में तो किसी भजनकीर्तन के जैसा रंग जमा हुआ था।"

चंदू प्याली लेकर भीतर चला गया लेकिन अुसकी ज़रासी तारीफ़ से मेरा विचारचक्र दुबारा दुगनी तेज़ी से घूमने लगा। मेरे भाषण के कअी वाक्यों पर लोग तालियाँ बजा रहे थे। वे तालियाँ और वे वाक्य अब भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं—'नारी त्याग की मंगल मूर्ति है--देवी है।' 'मेरे प्राण भले ही ले लो, लेकिन मेरे नन्हेमुन्हे के प्राणों की रक्षा करो' यह अुद्गार तो सिर्फ माता ही के मुखसे निकल सकता है।

'देवी मानकर ही गृहस्थी और समाज में नारी की अर्चना करनी चाहिये...लेकिन अिसके विपरीत, हमारे समाज में अिस देवी ही को बली चढ़ाया जा रहा है।'

'अंधश्रद्धा के कारण, निर्मम सामाजिक संकेतों के कारण नारी के व्यक्तित्व को नष्टभ्रष्ट किया जा रहा है। मानवता के नाते जीवन का अुपभोग करने के अुसके अधिकारों भी को पैरों तले कुचला जा रहा है!!'

पहाड़ के निकट जाकर ज़ोर ज़ोर से चीखने पर अपनी ही आवाज़ गूँज कर अुसकी प्रतिध्वनि सुनायी देती है। मेरा भी यही हाल है। शामको मेरा भाषण समाप्त हुआ तबसे मुझे अैसा जान पड़ रहा है मानो अुन वाक्यों को कोअी ज़ोर ज़ोर से रट रहा है। मेरे अुन वाक्योंपर तालियाँ बजानेवाले श्रोताओं के भी कानों में क्या ये वाक्य अिसी तरह गूँज रहे होंगे? हटाओ जी! अुनमें से कुछ तो गहरी नींद की गोदमें विश्राम कर रहे होंगे, कुछ सिनेमा के परदे पर दिखाअी देने वाले प्रणय-दृश्यों के दर्शन में लीन हो गये होंगे और कुछ क्लब में जाकर आमोद प्रमोद में अपने आपको खो बैठे होंगे।

अबलाश्रम के प्रधान मंत्री के नाते पिछले साल मैंने गाँव गाँव जाकर अनगिनत भाषण दिये, समाचारपत्रों में लेख लिखे, लोगों ने मेरे भाषण सुने, लेख पढ़े 'अशोकबाबू, भाषण देने की कला तो कोअी आपसे सीखे' कहकर मेरी बेहद प्रशंसा भी की। लेकिन मधुर शब्दों से रोटियाँ तो नहीं बनायी जातीं। समवेदना के लिये सिर्फ ज़बान की आर्द्रता काफी नहीं होती। अुसके लिये तो हृदय की आर्द्रता कीभी आवश्यकता होती है।

आश्रम के पचीस तीस प्राणियों का दुख हलका करने के लिये आजतक कितने धनवानों ने हाथ बँटाया है! और जिन्होंने हाथ बँटाया वह भी

किस मात्रा में ! अेक प्रोफ़ेसर हमारे द्वार पर झोली फैलाये खड़ा है, बिना कुछ लिये यह नहीं टलेगा, अिसी ख्याल से अधिकतर दाता मेरी सहायता करते हैं। अुनकी नज़रों में रास्ते पर का भिखारी और अबलाश्रम जैसी संस्था के लिये सहायता मांगनेवाला व्यक्ति– दोनोंभी अेकसे ही है ! कोअी कामधंधा नहीं अिसीलिये दोनों भी झोली फैलाये दर दर घूमते हैं !

चंदू दुबारा चुपकेसे आकर चला गया। जाते हुअे वह कुछ मुस्कराया अुसका ख्याल है–अशोक पुष्पा के प्यार में पागल है। और अिसी से अुसकी आँखों से नीन्द हवा हो गयी है.।

हाँ ! पुष्पा को मैं चाहता हूँ ! जी जानसे चाहता हूँ ! अिस बातको मैं छिपाना भी नहीं चाहता। आज भाषण देते हुअे भी, पलभर, वक्ता, अशोक न जाने कहाँ गायब हो गया था। पुष्पा के अशोक ने अुसका स्थान ले लिया था। सभा स्थल में तो अुस वक्त पुष्पा का अशोक अुपस्थित था। भाषण करते हुअे पलभर मैं रुक गया। श्रोताओं की धारणा हुअी कि वक्ता किस तरह सुंदर, प्रभावशाली अभिनय के साथ वक्तृता करना जानता है ! अुन बेचारों को क्या मालूम कि श्रोताओं में से ही किसीने वक्ता पर मोहिनी-अस्त्र का प्रयोग कर डाला है और अुस अस्त्र के प्रभाव से वक्ता गूँगा बन चुका है। कैसी नटखट है यह पुष्पा !

लेकिन यदि मेरा मन सिर्फ़ पुष्पा ही के विचारों में अुलझा रहता, तो मेरे दिल में अिस तरह अंधेरा कदापि न छाता। तब तो वहाँ चौथ की स्निग्ध चाँदनी खिल जाती। चांदनी ? नहीं ! संध्या-समय से मेरे दिल में तो मानों शोले धधक रहे हैं।

मेरे भाषण के आवेश की सबने प्रशंसा की। लेकिन अिस बात को शायद ही कोअी जानता होगा कि वह आवेश मैंने पाया कहाँ से। मामा और मामी की बीस साल की गृहस्थी का चित्र अुस क्षण मेरी आँखों के सामने खड़ा था। यूँ तो मामा को कोअी बुरी लत नहीं थी। लेकिन तब भी, किसी शराबी की स्त्री भी मामी से अधिक सुख–शांति–पूर्ण जीवन का अनुभव करती होगी। मामा की पार्थिव पूजा, कर्म–कांड, पूजा–पाठ, नियम–व्रत ... कितना आत्मिक बल था – अुनमें ! लेकिन अितना.

होने पर भी, अपनी स्त्री ही को वे सुखी न बना सके, तब औरों को सुखी बनाने की बात तो कहीं रही।

बेचारी मामी! गरीब गौ माता! जब मैं अुसे हरिभाऊ आपटे के अुपन्यास पढ़कर सुनाया करता तब अुनके आँसू थामे नहीं थमते थे। ज़बान होते हुअे वह ज़बान खोल नहीं सकती थी। आँखें होते हुअे देख नहीं सकती थी। और कान होते हुअे सुन भी नहीं सकती थी! यह तो हाल था अुस बेचारी का! बच्चों के लिये वह कितनी तरसती थी। लेकिन अुसके बच्चे हमेशा अधूरे ही दिन के पैदा होते थे। अेक बार वह अपने मायके गयी थी। किसी ने डॉक्टर से मुआयना कर लेने के लिये अुससे अनुरोध किया। डॉक्टर ने कहा कि गर्भाशय पर शल्य क्रिया करनी होगी। कुछ डरते डरते डॉक्टर की राय मामी ने मामा को सुनायी... और अुस वक्त मामा ने जो रौद्र रूप धारण किया, अुसे देखकर मैं तो काँपने लगा। तब मामी बेचारी डर गयी होगी अिस में कौन अचंभा था। मामा ने अुस डॉक्टर को और मामी के भाअी को लाखों गालियाँ देकर अुनके अमंगल की कामना की। अुन दिनों नरसोबा की वाड़ी में कोअी स्वामीजी रहते थे। मामा अुनसे मिलने गये। बच्चे पूरे दिन के पैदा होकर जीवित रहें अिस लिये स्वामीजी ने नागबलि, नारायणबलि करने की मामा को सलाह दी। अुनकी सलाह मामा ने झट् मान ली। सैकड़ों रुपये बरबाद हुअे, अग्निनारायण को जी भरकर घी खाने को मिला, गाँव के ब्राह्मण पंडितों की पाचों अुंगलियाँ घी में रही। लोग यूँ तो पहले भी मामा को अेक धर्म-परायण व्यक्ति मानते थे और अब तो अुनकी धर्म-परायणता की शहर में चारों ओर तूती बोलने लगी। लेकिन मेरी मामी तो अंत समय तक संतान के लिये तरसती ही रही, छटपटाती ही रही। स्कूल छूटने पर हमारे घर के सामने से होकर गुजरनेवाले बालकों की ओर वह लालचायी निगाहों से देखती। थोडी देर बैठने के लिये कोअी पडोसिन आती तो हाथ पैर पटकते हुये खेलने वाले अुसके नन्हे–मुन्हे के पैरों की पैंजनियाँ की मंजुल आवाज को सुनतेही वह आत्मविस्मृत सी हो जाती...

मामी को मैं जी जान से चाहता था और वह भी मुझे बेहद चाहती थी। और अिस तरह मुझपर असीम स्नेह का वर्षाव कर, दूध की प्यास

मठा से बुझा कर अपने प्यासे, अतृप्त मातृहृदय को सांत्वना देने की वह कोशिश किया करती थी। लेकिन जैसे जैसे मैं ज्यादा पढ़ने लगा, वैसे वैसे मामी से दूर जाने लगा। मामा भी बार बार अुसे जतलाते, 'अशोक तो हमारे पास रखी दासोपंत की अमानत है। कुछ ही दिनों में वे अीरान से लौटेंगे और अपनी अमानत वापस ले जायेंगे। तुम मोह के जाल में फँसकर अशोक से ज़्यादा प्यार न करो। ......अब दिल लगाओगी और बाद में रोना पड़ेगा।'।

पिताजी ठहरे मामा के सगे बहनोअी। किसी ज्योतिषी ने अुनसे कहा था कि पहले प्रसव के बाद आपकी स्त्री के भाग्य में संतान-प्राप्ति का और कोअी योग दिखाअी नहीं देता। संयोग की बात! मुझे जन्म देकर मा अिस दुनिया से हमेशा के लिये चल बसी। अुस ज्योतिषी की बात का पिताजी ने सोलहों आने विश्वास कर लिया। अुसने पिताजी के भाग्य में परदेशगमन का योग बतलाया। पिताजी ने बंबअी की नौकरी छोड़ दी और वे सीधे अीरान जा पहुँचे। 'जब तक आपका लड़का अपने पैरोंपर खड़ा नहीं होता, तब तक आप अुसका मुँह मत देखिये वरना दोनों में से किसी अेक के प्राणों को खतरा है' अुस देहाती भास्कराचार्य ने अुनसे कहा था। अुसकी बात का विश्वास कर पिताजी अेक बार भी अीरान से यहाँ नहीं लौटे। यह सच है कि हर महीने मामा के नाम अेक मनि-ऑर्डर और मेरे नाम आशिश और प्यार की अेक चिठी वे जरूर भेजते थे लेकिन अुनकी अिस अंध-श्रद्धा के कारण, बचपन के कअी सुखों से मुझे वंचित रह जाना पडा। मेरी ही भलाअी के ख्याल से अुन्होंने मुझसे दूर रहना पसंद किया लेकिन अिस दुनिया में प्राणपण से खोजने पर भी जो सुख हमारे हाथ नहीं आता, वहीं ज्योतिषीजी के अिस लुका-छिपी के खेल से हमें क्यों प्राप्त होने लगा!

मामा का और पिताजी का स्मरण हो आने पर मुझे तो बस हँसी आने लगती है। जीवन भर वे दोनों अर्चना करते रहे। लेकिन यह तो स्वयम् अुन्होंने भी नहीं जाना कि आखिर वे पूजा कर किसकी रहे हैं!

खैर! अुनका मज़ाक अुड़ाने का मुझको क्या अधिकार है? विगत दो साल से मैं प्रोफ़ेसर बना हूँ, लेकिन मेरा भी तो वही हाल है। मेरा ख्याल था कि

डॉक्टर ज़्यादा से ज़्यादा शरीर के रोगों से छुटकारा दिला सकता है। लेकिन प्रोफ़ेसर तो नवयुवकों के, समाज के भावी आधारस्तंभों के मनों को भी निरोग बना सकता है। अिसी लिये मैं प्रोफ़ेसर बना। लेकिन मैंने धोखा खाया था और अब मेरा हाल अुस पंछी के समान हो चुका था, जो असली फल के धोखे में, लकड़ी के बने सुंदर फल पर जा झपटा हो और अुस फल पर चोंच टकरा जाने के कारण कराह अुठा हो। हमारे कॉलेज में प्रोफ़ेसर थे तो बीस-पचीस ही! लेकिन अुन में भी कितने दल और अुपदल! कोअी प्रोफ़ेसर छात्रों में ज़्यादा प्रिय होने लगा कि अन्य प्रोफ़ेसरों के दिलों में वह बात काँटे सी खटकने लगती है। मामी की मूर्ति आठों पहर मेरी आँखों के सामने खड़ी होने के कारण, पिछले साल मैंने अपनी मर्ज़ी से अबलाश्रम के सेक्रेटरी का पदग्रहण किया। अुस वक्त भोली सूरत बनाकर ये ही विद्वान लोग मुझे अुपदेश के पाठ पढ़ाने लगे। 'देखो, अशोकबाबू, अबतक तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ है। आश्रम में जवान लड़कियाँ आती हैं और वह भी अैसी वैसी नहीं... कअी तरह की... कोअी पति का त्याग कर घर से भाग निकली हुअी, कोअी...'

शिक्षित व्यक्ति के मुँह से निकले अैसे प्रलाप सुनना सहनशीलता की सीमा के पार है। क्या अिन किताबी कीड़ों का यही ख्याल है कि जीवन में अैसा कुछ है ही नहीं कि जिसे हम अुदात्त कह सके। अिन में से कौन, किस लड़की के घर जाकर रात बे रात गप्पें लड़ाते बैठता है, कौन किस लड़की को अपने साथ लेकर सिनेमा देखने जाता है, अिन बातों को कॉलेज के तमाम लडके अच्छी तरह जानते हैं। लेकिन—

बेचारे मजबूर प्रोफ़ेसर! खैर! अिनकी तो बात छोड दीजिये। लेकिन प्रिन्सिपल जैसे अुच्च पदाधिकारी व्यक्ति...अुनकी ओर देखने पर भी मन को सांत्वना नहीं मिलती। वे बहुत ही अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं, अनूठे ढंग से अितिहास पढ़ाते हैं, मोटी तनख्वाह वाली सरकारी नौकरी मिलते हुअे भी, कम तनख्वाह पर अिस कॉलेज में काम कर रहे हैं...छात्रों से अुन्हें असीम स्नेह है...लेकिन अितना होनेपर भी, अुस दिन गैदरिंग के लिये जवाहरलालजी को प्रधान आतिथि के रूप में निमंत्रित करने का छात्रों का विचार सुनकर वे किस तरह बिगड़ पड़े! छात्रों की ओर से मैंने हिमायत की अिस

लिये वे मुझसे भी नाराज़ हुअे। कहने लगे, 'छात्रदशा में, राजनीति से दिलचस्पी रखने से पढ़ाअी में बाधा पड़ती है। छात्रों की हानि होती है...राजनीति में हिस्सा लेना तो आग से खेल खेलना है।' और प्यार मोहब्बत के खेल खेलना? छात्र भले ही प्यार मोहब्बत के खेल खेलें... हमें कोअी अेतराज़ नहीं है! यज्ञकुंड की पवित्र अग्नि से अिन्हें डर लगता है लेकिन सिगरेट जलाने के लिये चाहे जितनी बार दियासलाअी जलाओ, अिन्हें कोअी शिकायत नहीं!

अिन बेजान रंगबिरंगी पुतलियों के कारखाने में बैठकर मैं भी—

दिमाग़ चकराने लगता है! जान पड़ता है कि मेरे अिर्दगिर्द सभी ओर अंधेरा ही अंधेरा छाया हुआ है। और तब अंतर के अिस अंधेरे में सहसा हज़ारों विचार आने लगते हैं। लेकिन सिर्फ़ झिलमिलाने वाले तारों के बलपर, अंधेरी रात चांदनी रात में बदल नहीं सकती। अुसके लिये तो चाहिये विद्युल्लता की दमक! विद्युल्लता? मेरे जीवन में अैसी विद्युल्लता...

घंटों अिस अंधेरे की ओर मैं निहारता खड़ा रहता हूँ। चंदू शायद अिस बातपर हैरान होगा। लेकिन वह क्या जाने कि अंधेरे से व्याप्त अिस अंतरिक्ष की ओर देखने पर मेरे दिल को कैसी, अजब सी सांत्वना मिलती है। मुझे अैसा जान पड़ता है—हमारे वर्तमान समाज के समान, यह गगन-मंडल भी अेक सूना मंदिर है। नक्षत्रों के अनगिनत फूल अिस मंदिर में लगातार चढ़ाये जा रहे हैं। लेकिन अिस मंदिर में भी मूर्ति नहीं है।...यह तो सूना ही है।

यह अजीब सांत्वना तो अुस रोगी की सांत्वना के समान है, जो दूरसे किसी रोगी का दुःख देखकर पलभर मुस्करा देता हो।

मेरे कहने का मतलब चंदू की समझ में कभी नहीं आयेगा। अुसके शनिमाहात्म्य में लंगड़े-लूले विक्रम राजापर शनि देवता प्रसन्न हो जाते हैं —राजा अुसी क्षण पहले जैसा स्वस्थ बन जाता है। लेकिन—

● ● ●

टिक् टिक् ... बारह बज चुके। रात्री के अिस नीरव प्रहर में घड़ी की टिक टिक सुनने पर हमेशा अेक अजीब सा विचार मेरे दिल में आता है—काल-पुरुष के हथौड़े की चोटों की यह आवाज़ है। लेकिन अिस हथौड़े से दुनिया को अबतक क्या कोअी नया रूप प्राप्त हुआ है ! अुसका रूप तो पहले जैसा ही—

विचारों की अेक आँधी सी अुठी हुअी है मस्तिष्क में ! कहीं अिन विचारों के कारण मैं कहीं पागल न बन जाअूं !

लेकिन यदि हम कोअी विशेष कार्य करना चाहते हैं तो अुसके लिये पागल बन जाना ही ज़रूरी है। कोलंबस पागल था तभी तो अुसने अमरिका खोज निकाली, शिवाजी पागल था अिसी लिये अुसने स्वराज्य की स्थापना की, कॉलरे के कीटाणुओं का आविष्कार करनेवाले वैज्ञानिक ने, अुसकी आजमाअिश सबसे पहले अपने आप पर ही की थी ! अिस तरह पागल होने ही में सच्ची बुद्धिमानी है, समझदारी है। आगरकर, तिलक, गांधी, जवाहरलाल, सावरकर—सभी पागल थे, पागल हैं। और अिसी से आज हमारी मातृभूमि गर्व के साथ संसार में सिर अूँचाकर पाअी है।

चंदू का ख्याल है—अुसका मालिक बेकार ही परेशान होता है। न ठीक समयपर खाना खाता, न ठीक समयपर सोता है। लेकिन वह बेचारा नहीं जानता कि मनुष्य का शरीर तो बार बार सो सकता है—पर अुसका जागृत मन क्या कभी आजीवन निद्रा का अनुभव कर सकता है ! राम और सीता वनवास में, पौ फुटनेतक गपशप में रात बिता देते थे। मैं भी अुसी तरह गपशप में लीन रहा करता हूँ। मैं किससे गप्पे लड़ाता हूँ, अुसे चंदू देख नहीं पाता, न कभी वह देख पायेगा। वह दूसरा अशोक अदृश्य है लेकिन मुझ जैसा वास्तव का न होने पर भी, वह जीवित है। अस्थिचर्म के बने मनुष्य से भी कहीं ज़्यादा मात्रा में। अुस अशोक के साथ—जो मुझसे कहीं श्रेष्ठ है, गप्पें लड़ाते हुये, दिन निकल आया कि हम दोनों अेक दूसरे के गले से लिपट जाते हैं और अेक स्वर में केशवसुत की अुन पंक्तियों को गुनगुनाने लगते हैं—

*देशा विषयीं गोष्टी बोलत येथें
बसलों, विसरुनि कितीकदां निद्रेतें,
श्वासीं अमुचे श्वास मिळाले तेव्हां,
अश्रूमध्यें अश्रु गळाले तेव्हां
तेव्हां आम्हीं म्हटलें—ही ऱ्हासाची
रजनी केव्हां जाईल विरूनि साची?
स्वतंत्रतेची पहाट ती येईल
उत्कर्षाचा दिन केव्हां सुचवील?
या डोळ्यांनीं पहाट ती बघण्याचे
असेल का हो नशिबीं दुर्दैव्यांचे
किंवा तीतें आणायाचे कांहीं
यत्न आमुच्या होतिल काय करांहीं?

● ● ●

*यहाँ बैठकर हमारे देश की दुर्दशा पर बहस करते हुअे हमने कअी बार आँखों से नींद तक को भुला दिया। तब हम दोनोंकी साँस में साँस मिल गयी थी और हम दोनों ने अेक साथ आँसू बहाअे थे। अुस वक्त हमने कहा था, 'न जाने हमारे दुर्भाग्य की यह अंधेरी रात कब समाप्त होगी और स्वाधीनता की पौ कब फटेगी जो हमें सूचित करेगी की हमारे अुत्कर्ष का दिन निकट आया है। क्या वह मंगल दिन देखना हम बदनसीबों के भाग्य में लिखा होगा? अुस दिन को निकट लाने के लिये क्या हम कुछ कोशिश भी कर सकेंगे?—

२

पुष्पा

कहते हैं कि प्रातःकाल के सपने हमेशा सत्य होते हैं । यदि यह सच है, तो कहना पडेगा कि अब अशोक मेरे हो ही गये । दिन निकलते–निकलते कितना सुंदर सपना देखा मैंने ! कितना अनुपम और सुविशाल मंदिर था वह । मानो पहाड़ में अुत्कीर्ण कोअी गुफा ही हो । अुस मंदिर के भीतर हम गये । मंदिर का गर्भद्वार खोल कर अशोक ने मुझे भगवान की मूर्ति के स्थान पर बिठा दिया । अेक ओर तो मैं लाज के मारे मरी जा रही थी और दूसरी ओर मेरा मन अुल्लास के कारण झुम रहा था, खुशी से पागल हो रहा था ।

अशोक की ओर देखकर मैंने कहा, ‘ आप भी आअिये न भीतर । ’

अुन्होंने नहीं में सिर हिलाया । मैंने पूछा, ‘ क्यों ? क्या बात है ? ’

अुन्होंने कहा, ‘ तुम देवी हो और मैं हूँ तुम्हारा भक्त ! ’

बढ़िया, महीन, सुंदर साड़ी पहनते हुये समस्त शरीर में न जाने कैसी गुदगुदी सी होने लगती है । अुनके मुँह से अिन शब्दों को सुनकर मेरा मन आनंदविभोर हो, झूमने लगा ।

तभी मौसी की आवाज़ सुनायी दी और मेरी आँख खुली। सभी सुंदर सपने अिस तरह अधूरे ही क्यों रह जाते हैं ?

जैसे ही बाहर अुठकर आयी तो सामने ही चिंतोपंत का थूथना दिखायी दिया। मौसी हमेशा कहा करती है कि यह चिंतोपंत तो मेरा एक प्यारा, झबरा सा कुत्ता है।—लेकिन अुसे देखते ही मुझे तो गीदड़ की याद हो आती है। लेकिन कहते हैं कि सबेरे सबेरे नींद से अुठते ही, गीदड़ का मुँह देखना बड़ा ही कल्याणकारी होता है। और मैंने तुरंत ही अनुभव किया कि यह कथन बिल्कुल सच है !

कअी दिनों से सोचती थी कि अेकबार अशोक को अपने घर खाने या चायपर बुलाअूंगी। लेकिन कोअी बहाना ही नहीं मिल रहा था। कल सभा में अुनका भाषण सुनने के लिये मौसी भी आयी थी। अशोक का भाषण सुनकर मौसी अत्यंत प्रभावित हुअी और अुनके प्रति अुसके दिल में बड़े ही आदर का भाव निर्माण हुआ। घर आने पर मैंने अशोक को अपने घर किसी दिन खाने पर बुलाने का जिक्र किया। मौसी ने तुरंत कहा 'अरे, तो अिसमें सोचने की क्या बात है! कल ही बुला लो न अुन्हें।' मेरा ख्याल था कि कहीं यह कमबख्त चिंतोपंत फिजूल ही, बीच में टांग न अड़ायें। लेकिन मौसी का बाल्य-सखा होने के कारण यह शैतान यहाँ का ठेकेदार बन बैठा है तो क्या हुआ! आश्रम में तो वह अशोक के मातहत में ही काम करता है। जैसे ही मौसी ने अशोक को बुलाने के लिये कहा, अुसने अैसी सुरत बनायी मानो मुश्किल से कडुअी दवाअी का घूँट हलक के नीचे अुतार रहा हो। अुसने कडुअी सूरत तो जरूर बना दी लेकिन मुँह से कहा कुछ नहीं। चुपचाप सिर झुकाअे बैठा रहा।

अशोक के घर जाने के लिये मैं कपड़े बदलने लगी। साड़ी बदलते हुये, परसों का वह गीत मैं गुनगुना रहीं थी – अेरी मैं तो प्रेम–दिवानी——

अिस चिंतोपंत के कान बहुत लंबे हैं। बाहर ही से अुसने पूछा, 'कहिये पुष्पा बहन, किसके प्रेम में दिवानी हुअी हो ?'

'अशोक के प्रेम में' यह जवाब बिलकुल मेरे होठोंतक आया था! लेकिन दूसरेहि क्षण माँकी गोद में आने के लिये दरवाज़े तक दौड़ते हुअे आकर सहसा अुसकी ओट में छिप जानेवाले बालक का सा मेरा हाल हो

गया। किसी तरह जबान से शब्द ही निकल न पाया। कहते हैं कि होठोंतक पहुँचा अमृत मुँह भीतर जा पहुँचने में और भी कभी बाधाअें होती हैं। लेकिन मेरा तो ख्याल है कि होठों तक पहुँचा अमृत, मुँह के भीतर जा पहुँचने की अपेक्षा, होठों तक आ पहुँचे शब्द बाहर निकलने के रास्ते में, कहीं ज्यादा रुकावटें होती हैं।

हवा में झूमती सी मैं बंगले से बाहर चल पडी। बाग में माली दिखायी दिया। मैंने यों ही पूछा, 'माली चाचा, आज तो बगीचे में चारों ओर फूल ही फूल खिले नज़र आ रहे हैं! क्यों ठीक है न?"

मेरे मुँह से अिन शब्दों को सुनकर वह कुछ हैरान सा नज़र आने लगा। बाद में मेरी समझ में आया—मेरे मन की प्रतिछाया ही मुझे बगीचे में नज़र आ रही थी।

आधे रास्ते तक मैं तेज़ी के साथ चलती रही। लेकिन बाद में अनजाने ही मेरी चाल कुछ धीमी पड गयी। अिसलिये नहीं कि मैं थक गयी थी। मगर अिसलिये कि दिल में न जाने कैसी कैसी आशंकाअें अुठने लगी थीं।—

न जाने अिस वक्त अशोक घर पर मिलेंगे या नहीं! कॉलेज की तो छुट्टी जरूर है लेकिन आज आश्रम तो खुला ही है...या कहीं लाअिब्रेरी में जाकर न बैठे हों!

और यदि घर पर मिलें भी, तो क्या मेरा निमंत्रण वे स्वीकार करेंगे? कहीं अिस बहाने मेरी बात टाल तो नहीं देंगे कि तुम्हारी मौसीजी से मेरा ज़्यादा परिचय नहीं है। जा तो रही हूँ लेकिन भगवान जाने वहाँ क्या होगा। लगभग अेक साल होने आया। हम दोनों टेनिस खेलते हैं, घूमने टहलने जाते हैं। अेकबार मेरे ज़िद करने पर मेरे साथ वे सिनेमा भी आये थे। लेकिन अुनकी आँखों की ओर देखने पर, अब भी वहाँ अेक परायेपनका भाव झलकने लगता है। किसी वक्त तो जान पडता है—अेक अशोक में तीन अशोक समाये हैं। कॉलेज में पढानेवाले गंभीर मुद्रा के अशोक केवल हम दोनों को अेक जगह होने पर हँसी मज़ाक करने वाले, बात बात में मुझे छेडनेवाले, दिल्लगीबाज अशोक, और कल के समान सभा में भाषण करते हुअे, ये मानो किसी से

तेज़ शब्दों में तर्क कर रहे हैं, किसी से लड़ाअी झगड़ा करनेपर अुतारू हो गये हैं। अैसे प्रतीत होनेवाले अशोक—सिर्फ अेक ही घंटे में तीन रूप धारण करनेवाले व्यक्ति का और भी तो कोअी गुप्त रूप हो सकता है।

दरवाज़े पर लगी नाम की तख्ती बता रही थी—' अशोक भीतर है।' कितनी खुशी हुअी मुझे। यह साहब कभी दरवाजा भीतर से बंद कर लेना जानते ही नहीं। किसी के पूछने पर मज़ाक में कह देते हैं, ' मेरे यहाँ हर किसी के लिये दरवाजा खुला है।' अुनके अिस श्लेष का पाँसा अुन्हीपर पलटाने के लिये अेकबार मैंने पूछा था, ' क्या सभी के लिये दरवाज़ा खुला है? यानी चोर अुचक्कों के लिये भी?' तुरंत मुस्कराकर अुन्होंने कहा था, 'तुम जैसों के बंगले छोड़कर बेचारे चोर मेरे यहाँ क्योंकर आने लगे। चोरों को मोटी मोटी किताबों की जरूरत नहीं होती है पुष्पा!'

हर महीने अपने आपके और अेक सेवक की जीविका के लिये ज़रूरी रुपये रखकर बाकी सब रुपये अशोक आश्रम को दे डालते हैं यह मुझे मालूम था। अिस बातपर मुझे गर्व भी था। लेकिन हार—वह मामुली बातचीत में क्यों न हो किसे बर्दाश्त हो सकती है?

जवाब में मैंने कहा था, ' जिस के घर में चोर के हाथ भी कुछ नहीं आता, वह व्यक्ति किसी वक्त और किसी के माल पर हाथ मार भी तो सकता है।'

पलभर कठोर दृष्टी से अुन्होंने मेरी ओर देखा। लेकिन तुरंत ही मुद्रा पर सौम्यता का भाव धारण कर पूछा, ' क्या, मैं चोर हूँ?'

' हाँ!'

वे हैरान रह गये लेकिन दूसरे ही पल मुस्करा दिये। पूछा, '—आखिर मैंने किसकी चोरी की है? कुछ मालूम भी तो हो!'

' हम नहीं बताअेंगे।' मैंने कहा, ' लेकिन आप ने चोरी ज़रूर की है।'

' तब चोर को गिरफ्तार क्यों नहीं करतीं?'

प्रणय-भावना कितनी सलज्ज होती है? भरे दरबार में चिलमन की ओट में बैठने वाली महारानी के समान, वह शब्दों की ओट में छिपकर बैठती है। अशोक ने कहा, ' तब चोर को गिरफ्तार क्यों नहीं करती?'

अुस वक्त मन होने लगा कि झट् से अशोक का हाथ पकड लूँ और कह दूँ 'देखो यही है वह चोर! आखिर मैंने कर ही लिया न अुसे गिरफ्तार?' दिल बारबार कह रहा था, 'कह दो पुष्पा, कह दो!' लेकिन न जाने कौन मुझे आगे की ओर ठेल रहा था और कौन पीछे की ओर खींच रहा था।

अशोक के दरवाज़े ही में यह दृश्य तेज़ी से मेरी आँखों के सामने दिखाअी दिया। सोचा कि आहिस्ता से दरवाज़ा खोलकर, चुपके से भीतर जाकर जनाब को चौंका दूँ।

लेकिन भीतर जाकर देखती हूँ तो जनाब अपनी माताजी की तसवीर पर फूल चढ़ा रहे हैं।

दिल्लगी करने की सनक भी ठीक छींक के जैसी होती है। हम किसी तरह अुसे रोक ही नहीं पाते!

सहसा मैंने कह दिया, 'किसी को यक़ीन नहीं होगा'—

अशोक ने पीछे मुडकर पूछा, 'किस बातका?'

'कि भगवान को न माननेवाले अेक प्रोफ़ेसर, अपनी घर में, किसी तसवीर की पूजा करते हैं।'

'और पुष्पा जैसी सुंदर, पढ़ीलिखी और धनवान लड़की, कोअी अपने घर में क्या करता है यह चुपके से देखती है और अिस बात का ढिंढोरा चारों ओर पीटती है, भला अिस बात पर भी क्या कोअी यकीन कर सकता है?'

जवाब में मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि गंभीर मुद्रा से अशोक ने कहा, 'पुष्पा, दिल ही दिल में क्यों न हो, बिना किसी की पूजा किये मनुष्य से रहा जाता ही नहीं।' अपनी माँ की तसवीर की ओर भक्ति भाव से देखते हुअे अुन्होंने कहा, 'वत्सलता की, स्नेह की पूजा में अिन्होंने अपने आप की बलि चढ़ा। संसार में देवी अेक ही है और वह है नारी।'

मैं तो अशोक को अपने घर खाने का निमंत्रण देने आयी थी, न कि सुंदर तत्त्वज्ञान सुनने। मैंने आहिस्ता से कहा, 'तब तो आपको मानना पडेगा कि आपके सामने अिस वक्त अेक देवी ही खडी है।'

'देवी तो अपने भक्तों ही पर प्रसन्न होती है। कहीं मकान का नंबर तो नहीं भूल गयी यह देवी?'

कितने जल्द खुश-मिजाज़ बन जाते हैं अशोक! सहसा मुझे सबेरे का वह सपना याद हो आया। शरारत भरी मुस्कराहट के साथ मैंने कहा, 'वरदान माँगने के लिये आयी है यह देवी!' 'वर' शब्द का अुच्चारण जानबूझकर कुछ ज़ोर देकर ही मैंने किया यह बात अुनसे छिपी नहीं। वे हँस पडे। आकुल भाव से मैं सुनना चाहती थी कि अब वे जवाब में क्या कहेंगे। तभी, टन् टन्...

भला यह कम्बख्त टेलिफोन की मशीन भी आदमी के दिल का हाल क्या जाने! और अिसी लिये तो गांधीजी हमेशा मशीनों के खिलाफ थे—

टेलिफोन पर चिंतोपंत अशोक से बात कर रहा था— आश्रम में कोअी नयी लड़की आयी थी, वह अशोक से मिलना चाहती थी।

जबतक अशोक फोन पर बातचीत कर रहे थे, तबतक मेरे दिल में न जाने कितने विचार कौंध गये। क्या यह नयी लड़की बहुत सुंदर होगी? और खासकर, अशोक ही से वह किस लिये मिलना चाहती है? यदि वह वास्तव में अनाथ होगी, तो क्या चिंतोपंत अुसे अपने अधिकार में आश्रम में भरती नहीं कर सकते थे?

अब अशोक के लिये आश्रम जाना जरूरी था। अिसलिये, जैसे ही अुन्होंने रिसीव्हर नीचे रखा, मैंने कहा, 'आज आपको हमारे यहाँ खाना खाने के लिये आना होगा! यह देखकर कि वे पलभर कुछ सोच में पड गये है, दिल ही दिल में तो मैं जलभुन गयी; लेकिन जाहिरा शांतिपूर्ण स्वर में मैं ने कहा, 'न्यौते में जाने के किये भी क्या किसी से अिजाज़त लेनी पडती है? पिताजी की? प्रिन्सिपल साहब की? या समाज की —?'

अुनके पिता अीरान में है यह मैं जानती थी। और अिसीसे मैंने जरा मज़ाक करना चाहा।

जनाब हँस दिये। लेकिन मुँह से हाँ कहने का कोअी चिन्ह दिखायी नहीं दिया। तब मैंने अंतिम अस्त्र का प्रयोग किया!

'आज सालगिरह है —'

'अरे! तो यह पहले ही क्यों न बताया?'

'ठीक सात बजे! भूलियेगा नहीं।'

'नहीं, भअी नहीं! भूलूँगा कैसे! सात में पाँच मिनट कम रहते ही मैं हाज़िर हो जाअूँगा। तब तो तुम खुश होंगी?'

दिनभर मेरे मन को अेक अैसी अजीब सी गुदगुदी हो रही थी। मानो फूलों के बने क़ालीन के अूपर से मैं चल रही थी।

अुन मधुर शब्दों के क़ालीन पर मेरा दिल हर्षोन्मत्त हो, नाच रहा था, झूम रहा था!

'अरे! तो यह तुमने पहले ही क्यों न बताया?... नहीं, भअी नहीं? भूलूँगा कैसे ...... सात में पाँच मिनट कम रहते ही मैं हाज़िर हो जाअूँगा। तब तो तुम खुश होगी? कोअी कहेगा आख़िर अिन शब्दों में पागल हो जाने जैसा है। होने की सी क्या बात है?

अिसमें पागल होने की सी क्या बात है यह तो मैं बता नहीं सकूँगी। लेकिन भूख से व्याकुल मनुष्य को भरपेट भोजन मिल जाने पर अुसे जो खुशी होती है अुसका वर्णन क्या शब्दों में किया जा सकता है! अशोक ही ने अेक बार पढ़ाते हुअे क्लास में कहा था, 'मछुओं के जाल में तो समुंदर की मछलियाँ ही फँसती हैं, न कि मोती!' शब्दों का भी वही हाल है। अुनके द्वारा मन की गहराअी में छिपे भाव कभी व्यक्त हो ही नहीं पाते।

दो साल पहले पढ़ाने के लिये अशोक पहली बार हमारे क्लास में आये। वह दिन मुझे बारबार याद आने लगा। अुनकी गंभीर मुखमुद्रा और बातचीत का डाक-गाड़ी जैसा ढंग। पीरियड़ ख़त्म होते ही मेरे पडोस में बैठी प्रभा से मैंने कहा, 'अिनका नाम जानती हो?'

बेचारी सीधीसादी प्रभा। अुसने कहा, 'हाँ! अशोक देव'।

'अरे नहीं! तुम्हें नहीं मालूम!! अिनका नाम है स्वामी अशोकानंद!'

वत्सला, शोभना, काशी सभी ठठाकर हँस पड़ीं। अब मुझे भी ज़्यादा जोश आया था। मैंने कहा, 'बहुत ही गंभीर मालूम पडते हैं ये महाशय! भला अैसे पत्थर के बने पुतले से भी क्या किसी को प्यार हो सकता है?'

अुस दिन का मेरा वह वाक्य आजकल मेरी सहेलियों के लिये अेक तकियाकलाम ही बन गया है। लेकिन अुन बेचारियों का भी क्या कसूर। अशोक को स्वामीजी कहकर अुनका मजाक अुड़ानेवाली पुष्पा अेक ही साल में अुनका गुणगान करने लगी। टेनिस-कोर्ट पर अेक बार मुझे अशोक ने लव गेम दिया। बस, अेक अुसी शब्द पर कअी दिनोंतक सभी सहेलियाँ श्लेष करती रहीं। लेकिन अुन श्लेषों को हज़ार बार सुनकर भी मैंने कभी अनुभव नहीं किया कि मेरी तबियत अूब गयी हो। मनुष्य सिर्फ अपने रूप, धन और विद्वत्ता ही का प्रदर्शन करना चाहता है यह बात नहीं। वह तो अपने प्रेम का भी प्रदर्शन करने के लिये निरंतर लालायित रहता है!

और अिसीलिये तो आज मैंने चालबाज़ी खेलकर, खाने पर हमारे यहाँ आने के लिये अुन्हें राज़ी कर लिया। आज शाम अुनके निकट बैठकर मैं खाना खाअूँगी। चुपके से अुनकी थाली में से आधी पूरियाँ निकाल लूँ तो? या मेरी ही थाली में से अेक पूरी चुपके से अुनकी थाली में डाल दूँ? लेकिन मेरी यह शरारत यदि मौसी या चिंतोपंत देख लें तो... लेकिन हर्ज ही क्या है? मौसी से मैं कह दूँगी कि बचपन में तुम्ही ने तो मुझे सिखाया था कि कल किया जानेवाला काम आज ही करना अच्छा होता है। कुछ ही दिनों के बाद ब्याह हो जाने पर अशोक और मैं— हम दोनों — अिसी तरह दिल्लगी करते हुअे खाना खाअेंगे। तब क्यों न आज ही से—

यों ही मैंने घड़ी की ओर देखा। मेरा ख्याल था कि चार बजने जा रहे हैं लेकिन अब तो कहीं दो बज रहे थे। न जाने ये घड़ियाँ मनुष्य के मन से किसलिये इतनी शत्रुता रखती हैं। परीक्षा के समय नौ बजे होंगे अिस ख्याल से घड़ी की ओर देखने पर अुसमें दस कब के बज चुके दिखायी देते हैं; और अपने प्रिय व्यक्ति के आने में अब तीन ही घंटे बचे हैं, अिस आशा से देखने पर घड़ी बताती है—अब तो और भी पाँच घंटे बाकी हैं। मोटर की रफ्तार हम चाहे जैसी कम ज़्यादा कर सकते हैं, काश! अिन घड़ियों की चाल पर भी हम रोकथाम लगा सकते। लेकिन

सिर्फ़ मेरी ही घड़ी के तेज रफ़्तार में दौडने से क्या होगा? अशोक की घड़ी तो—

मेरी यह कल्पना अशोक को सुनाने पर वे कहेंगे– 'तुम तो बिल्कुल पगली हो पुष्पा!' और तब मैं कहूँगी 'हाँ, मैं पगली ही सही लेकिन पहले यह तो बताअिये कि आखिर मुझे पागल बनाया किसने? आप ही ने तो! और अब अैसा कहना क्या आपको शोभा देता है?'

लेकिन क्या यह सब मैं कह सकूँगी?

पाँच घंटे! समय बिताने के लिये अशोक का दिया गॉर्की का अुपन्यास मैं पढ़ने लगी– 'माँ!' अबतक यह अुपन्यास मैंने पढ़ा नहीं अिसे सुनकर अशोक हैरान हैं। और मैं हैरान हूँ कि यह अुपन्यास अशोक को अिस कदर क्यों पसंद आया! अुनके माँ नहीं है—और शायद अिसी से अिस अुपन्यास में वर्णित माँ की ममता से वे प्रभावित हुअे हों।

पाँच बजे अुपन्यास पढ़कर पूरा किया। पुस्तक का अंतिम अंश पढ़ते हुअे तो मैं रो पडी। अुस माँ से मुझे कुछ डर भी लगने लगा। अपने बच्चों को वह प्राणों से ज़्यादा चाहती थी और बच्चे भी अुसे बेहद चाहते थे। क्या, और कहीं जाकर वे लोग सुखशांति से जीवन नहीं बिता सकते थे? लेकिन तब — नहीं नहीं। कल का अशोक का भाषण — यह अुपन्यास —

पाँच बजे शोभना ने अपने यहाँ मुझे बुलाया था। झट् हो आअूँगी सोचकर मैं निकली भी। लेकिन दरवाज़े ही में चिंतोपंत से मुलाक़ात हुअी। सोचा – जिस तरह चिंतोपंत, आश्रम से आज जल्द लौटे अुसी तरह कहीं अशोक भी निर्धारित समय से कुछ पहले ही न आ धमके। और कहीं मैं ही घर पर न दिखाअी दी तो न जाने क्या क्या ताने अुलाहने देकर नाकों दम कर देंगे। ना रे भैया! अिससे तो बेहतर है कि शोभना चार गालियाँ दे तो अुन्हें चुपचाप सुन लूँ और यहीं रहूँ।

मैं आअीने के सामने जा बैठी। मैं चाहती थी कि आज अैसी वेशभूषा करूँगी कि अशोक मेरी ओर देखते ही दंग रह जायँ। लगातार दो घंटे तक कोशिश करती रही लेकिन व्यर्थ! मेरे मर्जी के मुताबिक वेशभूषा मैं कर ही न पायी। आजकल सिनेमा बोलने लगे हैं न? काश! यह

आओीने भी बातचीत कर पाते। लेकिन आओीने बातचीत करने लगे भी, तो क्या पुरुषों के मन का भेद वे कभी जान पायेंगे। कोओी बाढ़िया सुंदरसी साड़ी पहनने पर, या आकर्षक ढंग से बालों को सँवारने पर मेरी सभी सहेलियाँ मेरा मज़ाक अुडा कर नाक में दम कर देती हैं। लेकिन अशोक के मुँह से तारीफ़ का अेक शब्द भी कभी निकला हो तो कसम! किसी वक्त तिरछी निगाहों से अेक नज़र यूँ ही देखकर मुस्करा देते हैं। लेकिन अितने ही से कोओी किसी के दिल का भेद क्या खाक समझे?

सात में पाँच मिनट कम थे, अब सात बज कर पाँच मिनट हो गये। अशोक का अब तक पता नहीं! न जाने क्या बात है! मन चुलबुलाने लगा। अशोक यदि आये ही नहीं तो? लेकिन नहीं! अैसा कदापि नहीं हो सकता! कोओी ज़रूरी काम होगा तो कम से कम अितना तो कहने के लिये ज़रूर आयेंगे कि मैं मज़बूर हूँ ... और अेक बार अुनके यहाँ आ-जाने पर मैं देखूँगी कि वे जा कैसे सकते हैं!

घड़ी दौड़ने लगी। सवा सात साढ़े सात,... अुधर चिंतोपंत और मौसी में प्यारभरी बातें हो रही थीं। मुझे क़तओी पसंद नहीं है अिस चिंतोपंत की ये हरकतें। और मौसी को भी क्या यह शोभा देता है? पति आवारा निकला और अुसकी अकाल मृत्यु हो गयी — तब भी क्या हुआ! यह बर्ताव मौसी को हरगिज शोभा नहीं देता। अल्हड़ लड़कियों जैसा बनाव सिंगार करना, हमेशा बीमारी का नाटक करना, खूसट चिंतोपंत के साथ प्यारभरी बातें करना, ठठाकर हँसना, नाज़ नखरे दिखाना — मौसी के पास काफ़ी रुपये हैं, जिन्होंने अिन तमाम बातों पर पर्दा डाल रखा है। माँ और मौसी दोनों सगी बहनें हैं अिस बात का कहने पर भी कोओी विश्वास न करेगा। माँ बेचारी कोंकण का अपना मकान छोड़कर कभी बाहर निकली ही नहीं। हमेशा पुरानी, बेरंग धोतियाँ ही पहनती रही। आँगन की तुलसी मैया, रसोओी घर की बिल्लियाँ, और गो-शाला की गाअें-भैंसें, बस यही था अुसका मित्र-परिवार। ज्वर हो आने पर बेचारी कराहती तक नहीं थी। चुपचाप बर्दाश्त कर लेती थी। और अेक ये मैना देवीजी हैं कि--

अेक-दो-तीन! आठ बज चुके। अब मैं अशोक पर बुरी तरह झल्ला

पड़ी। तो अिसका मतलब हुआ कि हज़रत का मुझसे प्यार यानी महज़ अेक नाटक ही है।

मौसी ने आवाज़ दी। वहाँ जाकर देखती हूँ तो अेक दूसरा ही नाटक चल रहा था। चिंतोपंत मौसी की तीमारदारी में जुटा हुआ था। अुसने अिलेक्ट्रिक का पंखा चालू कर दिया। मौसी ने कहा, 'अरे, बंद भी करो! मुझे सर्दी लग जायगी।' अिसपर अुस लूथरे ने हँस कर कहा, 'अरे हाँ! आप बिल्कुल ठीक कहती हैं, मैना देवी! देखो न, मैं भी कैसा बेवकूफ़ हूँ।'

'मैना देवी', 'सरकार'—भला यह भी कोअी बातचीत का ढंग है। चिंतोपंत वास्तव में बेवकूफ़ है या —

नहीं। वह सिर्फ़ बेवकूफ़ ही नहीं, दुष्ट भी है। वरना जब मैंने मौसी से कहा कि अशोक आठों पहर काम में अुलझे रहते हैं, तब अिसके पेट में क्यों दर्द होने लगा? तुरंत कहने लगा, 'आज आश्रम में तारा नाम की अेक नयी लड़की आयी है। शायद अुसे अपने साथ लेकर अशोक कहीं घूमने टहलने गये हों। या अुसके साथ गपशप करते बैठे हो। मैंने घर पर फोन भी किया था लेकिन चंदू ने बताया कि वे तो कबके बाहर चले गये हैं।'

जब भी देखो, अशोक की बुराअी करने का मौका यह शैतान हाथ से जाने नहीं देता। अिस बंदर की ओर कोअी आँख अुठाकर भी देखता न होगा, अिससे अपने दिल का गुबार अशोक पर निकालता है। अशोक के मंत्रि होने के पहले यही आश्रम का सर्वेसर्वा बन बैठा था — अब अिसे कोअी नहीं पूछता! शायद अुस जलन को भी अिस तरीक़े से यह मिटाना चाहता हो। अशोक के खिलाफ़ जब यह कुछ कहने लगता है तब तो जी चाहता है कि अिसे अैसा मुँहतोड़ जवाब दे दूँ कि — लेकिन मौसी है न अुसकी हिमायती! झट् कहती है, 'बेटी पुष्पा, चिंतोपंत मेरे बचपन के साथी हैं।' तब मैं भी कह देती हूँ, 'और अशोक मेरे गुरु हैं। अुनकी बुराअी मैं नहीं सुन सकती!'

लेकिन यह नटखट ज़बान किसी तरह दिल का कहा मानती ही नहीं।

अैसे समय मेरा मन तो नहीं चाहता कि अशोक को अपना गुरु कहूँ, लेकिन —

आठ बजकर पाँच मिनट हो चुके। चिंतोपंत का अशोक की बुराअी का भजन-कीर्तन जारी ही था। मौसी ने कहा, 'दुनिया में पाप किसी हालत में छिप नहीं सकता।' अिसपर ठठाकर हँसते हुअे चिंतोपंत ने कहा, 'आप भूल रही हैं, हुजूर! आजकल तो हरअेक की जेब में, हरवक्त, संतान-निरोध के साधन रखे ही रहते हैं।'

मेरे तनबदन में आग सी लग गयी! तब भी मैंने शांतिपूर्वक पूछा, 'क्या, हर किसी की जेब में?'

बुराअी भी कैसी अंधी होती है! चिंतोपंत ने शान के साथ जवाब दिया, 'हाँ! हर किसी की जेब में।'

'तो ये तमाम चीजें आपकी भी जेब में रखी होंगी।' मैंने कह डाला।

चिंतोपंत अिस तरह झल्ला पड़ा कि कुछ न पूछिये! सुपाड़ी, अधजली बीड़ियाँ आदि जेब का तमाम कूडा करकट निकाल कर मेरे सामने मेज़ पर धमूसे पटक दिया अुसने।

पैसे के बटुअे की ओर संकेत करते हुअे मैंने कहा, 'और यह बटुआ खोलकर नहीं दिखाया आपने?'

'संतान-निग्रह के साधन यानी होमिओपथी की गोलियाँ नहीं हैं, देवीजी!' कहकर जनाब मुँह फुलाये अेक ओर बैठ गये।

मौसी के अुपदेश के डोज़ से छुटकारा पाने के लिये मैं चुपकेसे वहाँ से खिसक गयी और बाहर बगीचे में आयी।

कैसी सुंदर चाँदनी खिली थी। सहसा अुस गाने की पंक्ति मुझे याद हो आयी, 'तू मेरा चाँद मैं तेरी चाँदनी'। लेकिन मैं भी कैसी बेवकूफ़ हूँ! क्या कोअी समझदार प्रेमिका अपने प्रीतम की तुलना चाँद के साथ भी कहीं कर सकती है? चंद्रमा तो कलंकित है। हाँ! कलंकित! मेरे अशोक – मेरे अशोक चंद्रमा नहीं, वे तो सूरज हैं!

●●●

३

अशोक

पुष्पा मुझसे नाराज़ हुअी होगी। सात में पाँच मिनट कम रहते ही अुसके घर पहुँचने का मैंने वादा किया था। और यहाँ तो सवा आठ बज चुके हैं। लेकिन मैं भी क्या करता! मज़बूर था। तमाम दिन मेरे मस्तिष्क में अेक आँधी सी अुठी थी। सोचा कि दूर कहीं अकेले में जाकर बैठूँ। शाम के वक्त, गाँव के बाहर, टीले की ओर टहलने चल दिया। अेक ओर, अच्छा सा, शान्तिपूर्वक स्थान देखकर वहाँ जा बैठा। लेकिन दुबारा वही दृश्य आँखों के सामने झूमने लगे। कहीं से घड़ी ने टन् टन् करके आठ बजाये और तब कहीं मेरी तंद्रा टूटी।

आज आश्रम में आनेवाली वह नयी लड़की तारा। जब मैंने सवाल किया कि तुम कहाँ रहती हो? तब 'यहीं' कहकर तुरंत अुसने मेरे पैर छू लिये। अैसी लड़की को आश्रम में स्थान देना क्या मेरा परम कर्तव्य नहीं है? लेकिन हमारे चिंतोपंत भी अेक अजीब चलते पुर्ज़े आदमी हैं। अुस लड़की ने कहा था कि मैं अशोक बाबू ही से मिलना चाहती हूँ— शायद अिसी बात से वे नाराज़ हुअे हों। यह सच है कि आश्रम की आमदनी और खर्च दोनों का मिलाप करते हुअे नाकों दम हो जाता है,

लेकिन क्या अिसी से, तारा जैसी असहाय लड़की के मुँह पर अैसे अुद्गार निकाले जाय कि ' खूबसूरत चेहरे वाले व्यक्ति को भूख कम लगती हो यह बात तो नहीं है... ! '

अेक साल से चिंतोपंत और मैं — हम दोनों अेक ही दफ्तर में, अेकसाथ काम कर रहे हैं। लेकिन अिस भले आदमी के मन की थाह मैं किसी तरह पा ही नहीं सका ! सेवा के नाम पर आश्रम का काम करना हो, तो आश्रम की लड़कियों के प्रति हमारे दिल में सच्ची सहानुभूति होनी चाहिये; लेकिन अिस भले आदमी की नज़रों में तो शायद आश्रम और होटल अेक से ही हैं ! लड़कियों पर बात बात में झल्लाना, किसी के जीवन के किसी राज़ को छेड़कर अुनके जले पर नमक छिड़कना ... अिसकी निगाहों में तो आश्रम की अनाथ लड़कियाँ मानों आमरण कारावास की कैदी ही हैं।

गाँव के बड़े बड़े लोगों से अुसका मिलना जुलना है। सभी समाचार-पत्रों के संपादकों अेवं संवाददाताओं से अुसकी पहचान है। अिसे वे लोग मानते भी खूब हैं और अिसी से, काम का आदमी समझकर अिसे आश्रम का कर्मचारी बना लिया गया। लेकिन अुसका शायद यह ख्याल है कि लोगों की नज़रों में वह कुछ गिर गया है, अिसकी वजह सिर्फ़ मैं ही हूँ। तमाम लड़कियाँ मुझको चाहती हैं यह बात भी शायद अुसे गवारा नहीं है। और परसों वाली अुस घटना के बाद तो जनाब मेरी ओर मरकनी भैंस के समान घूर घूर कर देखते हैं। किसी अखबार के संपादक ने, किसी रसोअीदारिन को पाप में फँसाया और अुस संपादक के गुनाहों पर पर्दा डालने के लिये अुस बेचारी को आश्रम में ला कर चिंतोपंत ने अुससे जबर्दस्ती झूठमूठ ही अेक बयान लिखा लिया... दिमाग़ चकराने लगता है अिन षड्यंत्रों को देखकर ! यदि मैं अुस ' वृषभ ' के संपादक की पोल न खोलता, तो बेचारी अुस रसोअीदारिन को सिवा आत्महत्या के कोअी चारा ही नहीं था।

हमारी अध्यक्ष महोदया तो महज़ अपने बड़प्पन की रक्षा करने के लिये कुर्सी अड़ाये बैठी हैं। कार्यकारिणी के सदस्यों में से कअी सदस्य तो अैसे हैं जो बरसों आश्रम को दर्शन नहीं देते। सिर्फ़ अेक ही वर्ष का तज़रबा।

लेकिन । मेरे जीवन के कअी वर्षों की मधुर कल्पनाअें अिस आघात से ढह गयी । सेवा धर्म कोअी मधुर स्वप्न नहीं है । वह तो अेक कटु सत्य है ।

कल सभा में, मेरे ही भाषण ने मेरे मन में अेक भयानक आँधी सी अुठा दी । आज अिस तारा का आगमन हुआ । अपने विगत जीवन के विषय में कुछ बताने जैसी अुसकी हालत ही नहीं थी । लेकिन जबसे अुसे देखा, मेरी कल्पना से अुसके जीवन के विभिन्न चित्र, न जाने कितने रंगों में मैंने बना डाले । 'शायद अुसका पति आवारा, बदचलन होगा । अुसने कोअी रखैल घर में ला कर रखी होगी, शायद अिसकी धोती पर पेट्रोल छिड़क कर अिसे जला कर मारने की कोशिश अुसने की होगी । किसी लालची रिश्तेदार ने, अिसे किसी बूढ़े खूसट के गले बाँध दिया होगा... गरीबी के कारण यह किसी के चंगुल में फँसकर —'

कल्पना को गरुड़ के पंख होते हैं ।

लेकिन आश्रम में रहनेवाली औरतों के, अुनके अपने तजरबे भी कम नहीं हैं । हमारे विचारों में, पुस्तकों में और पोथी पुराणों में स्त्री देवी है । लेकिन आचार में ? — अेक गुलाम — सिर्फ़ अेक पालतू जानवर ! अिससे अधिक अुसका मूल्य है ही नहीं ।

लेकिन आश्रम के पाँच पचीस अनाथ स्त्रियों की रक्षा का भार ग्रहण कर लेने भर से समाज के हृदय में तो परिवर्तन नहीं हो सकता । बिना अुसमें परिवर्तन हुअे — लेकिन समाज के मन का परिवर्तन करना क्या अितना आसान है...

अगस्ति ने समूचा समुद्र ही प्राशन कर लिया था । सच्चे सुधारवादी के लिये अगस्ति अेक महान् गुरु हैं !

अगस्ति ! —

प्राचीन कवि की कितनी भव्य और अुन्नत कल्पना है यह ! लेकिन भव्य होने पर भी, आख़िर वह कल्पना ही जो ठहरी !

देरी की अिस वजह पर क्या पुष्पा विश्वास कर लेगी । यदि मुझे मामुली सी ठोकर लगती तो अुसे वह औरत देख पाती और अुसी क्षण अुसकी तमाम नाराज़ी दूर हो जाती । लेकिन मेरे दिल में अुठनेवाली

अिस भयानक आँधी के कारण मेरी देह चूर चूर हो रही है — यह मैं अुसे किस तरह दिखा सकूँगा ।

यह तो खैर ठीक ही हुआ कि जन्म दिनके अुपलक्ष्य में पुष्पा को देने की भेंट, टहलने जाते हुअे ही मैंने खरीद ली थी । वरना यहाँसे लौटकर अुसे खरीदने के लिये बाज़ार जाता, तो अुसके घर जाने में रात के नौ ज़रूर बज जाते ।

बंगले के निकट आते ही फाटक के पास कोअी खड़ा दिखाअी दिया । शायद पुष्पा ही है ! मेरे दिल में अुल्लास की अेक विशाल लहर हिलोरे लेने लगी । मानों अुस लहर ने ही मुझे पलभर में फाटक के निकट ला छोड़ा । स्निग्ध कौमुदी के प्रकाश में पुष्पा की वह आँखें-मूँदी मूर्ति कितनी मोहक दिखाअी दे रही थी । मानों चंद्रकिरणों के सहारे कोअी अप्सरा ही धरातल पर अुतर आयी हो ! अुसके बिल्कुल निकट जा कर मैंने आहिस्ता से पूछा, ‘ किसके ध्यान में लीन हो, पुष्पा ? ’

वह चौंक पड़ी । लेकिन दूसरे ही क्षण अुसके चेहरे पर लज्जा की रक्तिम आभा फैल गयी । सलज्ज मुस्कराहट के साथ अुसने कहा, ‘ किसी आदमी के ध्यान में ! ’

‘ लेकिन आदमी की अपेक्षा भगवान के ध्यान में लीन होना अच्छा है ! ’

‘ क्यों ? ’

‘ भगवान तो आदमी की तरह काम में व्यस्त नहीं रहते हैं ! ’

‘ सच है ! भला भगवान को भी क्या कामकाज करना पड़ता होगा ? ’

‘ क्यों ! अुसके पीछे तो दुनिया भर की देखभाल करने का झंझट जो लगा रहता है ! ’

‘ लेकिन आजकल तो स्वयं मनुष्य ही भगवान की अुस ज़िम्मेदारी का भार अुठाने लगे हैं और अिसी से तो अुन्हें किसी भले आदमी के यहाँ आने में देरी होती है । ’

‘ लेकिन यहाँ तो किसी ने किसी लाभ की आशा से ही आने में देरी कर दी है पुष्पा ! ’

‘ लाभ ? अब भूखा रहना पड़ेगा, क्या, यही है लाभ ? ’

'लेकिन यहाँ दुख किसे है? मेरी तो जैसे भूख प्यास ही मर गयी है।'

'क्यों?'

'किसी सुंदर मूर्ति का दर्शन जो किया है!'

'ओह! तो यह कहिये न कि आज आश्रम में अेक बहुत ही खूबसूरत नयी लड़की का आगमन हुआ है।'

'आश्रम में नहीं! बगीचे में। खिली हुअी चाँदनी में!'

प्रणय संवाद तो मानों आँखमिचौली का खेल है। कम से कम अुस वक्त हम दोनों को अैसा ही प्रतीत हुआ। चुहकते किलकारियाँ करते हम दोनों भीतर गये।

लेकिन पुष्पा की मौसी को, निकट से देखने पर अुसके बारे में मेरे दिल में न जाने क्यों, अेक नफ़रत सी पैदा हुअी। चिंतोपंत अुसका हाथ अपने हाथ में लिये बैठा था। कहीं मैं कुछ और ही न समझ बैठूँ अिस ख्याल से, बात बनाते हुअे अुसने कहा – 'अशोक बाबू, हमारी मैना देवी के समान स्त्री लाखों में भी बिरली ही होंगी। भगवान् कसम! कैसा दिमाग पाया है। पढ़ने लिखने से किस तरह गज़ब का शौक है! कैसी जिज्ञासा है! तुम जब भीतर आये, तब मैं अुन्हें हस्त-सामुद्रिक पढ़ा रहा था।'

यह चिंतोपंत मैना देवी को क्या खाक हस्त-सामुद्रिक पढ़ायेगा! हस्त-सामुद्रिक के विषय में ये जनाब स्वयं कुछ जानते भी हो तब न!

जैसे ही मैं कुर्सी पर बैठा, मैना देवी ने अपनी बीमारी का दुखड़ा रोना शुरू कर दिया। अूपर से देखने पर तो बेचारी खासी हट्टीकट्टी, तगड़ी दिखाअी देती थी। शायद गरीब का समय काटते कटता नहीं होगा और अिसी से, अिस खेल के ज़रिये अपने दिल बहलाव का अेक साधन अुसने जुटा लिया था। और जब चिंतोपंत ने कहा, कि लूँगे बाबा नाम के कोअी साधुमहात्मा, जो मरे आदमियों को भी दुबारा जिंदा कर सकते हैं, जल्द ही यहाँ पधारनेवाले हैं, और तब मैना देवी अपनी बीमारी से छुटकारा पाने के लिये अुनके पास जानेवाली हैं, तब तो मैं अपनी हँसी किसी तरह रोक न पाया।

लेकिन प्रतिपल मेरे मन की चिढ़—घृणा बढ़ती ही जा रही थी। मैना

देवी जॉर्जेट की महीन धोतियाँ पहने ... और आश्रम की लड़कियों के लिये वक्त पर तीन चार रुपये वाली धोती भी मिलना मुश्किल हो जाये। अिस रंगीन मिज़ाज़ विधवा के मुँह से निकली हर बात को, अिसकी हर अिच्छा को समाज सर आँखों पर अुठाये, और मज़बूर हो कर आश्रम में आनेवाली अल्हड़ लड़कियों की पहली ही ग़लती पर समाज अुन्हें कठोर शासन करे।

सोचा – भूक नहीं है कहकर यहाँसे चला जाअूँ? लेकिन मैं तो पुष्पा की सालगिरह की अवसर पर यहाँ आया था। यदि यह मैना देवी धनवान न होती तो पुष्पा को पढ़ाने का अवसर भी मुझे प्राप्त नहीं होता — और शायद पुष्पा की और मेरी पहचान भी न होती।

अपनी मौसी के विषय में पुष्पा ने अेक बार मुझे बहुत कुछ बताया था; वे तमाम बातें मुझे याद हो आयीं। ग़रीब खानदान की यह सुंदर लड़की! किसी व्यसनी, आवारा, बदचलन ज़मींदार को यह पसंद आयी। बाद में जल्द ही पति की मृत्यु हुअी। अिसके बाद, अिसके हाथ में रुपये पैसे खेलने लगे। यह दोनों हाथों रुपये लुटाने लगीं।...

थालियाँ परसी गयीं। पुष्पा को देने का अुपहार अबतक मेरे ही पास था। वह मैं अुसके हाथ में देने लगा। 'आज के अिस महान् खुशी के अवसर पर मेरी ओर से यह तुच्छ अुपहार —' ये शब्द मेरे मुँह से निकले भी नहीं थे कि मैना देवी ने मेरे हाथ से वह अुपहार खींच लिया। कहा, — 'वाह साहब! मैंने कहा, सालगिरह तो मेरी है!'

मैं हैरान रह गया। क्रोध से मैंने पुष्पा की ओर देखा। अुसकी दृष्टि में क्षमा-याचना का भाव टपक रहा था। मानों वह मुझसे कह रही थी 'सालगिरह किसकी है यह बता देने पर शायद आप नहीं आते। अिसलिये......'

पुष्पा ने मुझको धोखा दिया। लेकिन मुझे खुशी ही हुअी। वह धोखा नहीं था। प्यार का वह अेक दिल्लगी भरा रूप था।

मैं मुस्करा दिया। लेकिन खाना खाने पर बैठते ही मेरी वह मुस्कराहट न जाने कहाँ ग़ायब हो गयी। भोजन की तमाम चीज़ें बड़ी ही स्वादिष्ट बनी थीं। लेकिन मुझे तो वे ज़हर के जैसे लग रही थीं।

मैना देवी ने बड़ी खुशी के साथ, वहाँ से कुछ ही दूरी पर, मिठाअियों पर हाथ मारते हुअे बैठे अपने प्यारे कुत्ते मुझे दिखाअे।

अिस बंगले में कुत्तों को भाँति भाँति के पक्वान्न खिलाये जा रहे हैं! लेकिन गाँव के सैंकड़ों घरों में, अिन्सानों को भरपेट, रूखीसूखी रोटी तक मयस्सर नहीं होती होगी!

यहाँ कुत्तों के हर चाव पूरे किये जा रहे हैं। और वहाँ ग़रीबों के घरों में, नन्हेमुन्नों की कअी छोटी छोटी अिच्छाअें भी शायद अधूरी ही रह गयी होंगी!

●●●

४

सुशीला

प्रेमा और प्रभाकर दोनों खाना खाने बैठे थे। अुनकी थाली की ओर देखकर मेरा कलेजा मुँह को आने लगा। परसों ही प्रेमा से मैंने कहा था— 'तुम्हारी सालगिरह के दिन मैं ज़रूर हलुआ पूरी बनाअूँगी। दो पहर में तुम्हें स्कूल जाने की जल्दी रहती है। अिसलिये तुम्हारी सालगिरह हम अुस रोज़ रात को मनायेंगे।'

अुस वक्त, खुशी से झूमते हुअे, मेरे गले में दोनों हाथ डालकर प्रेमा मुझसे लिपट गयी थी। प्रेमा के प्यार भरे अुस स्पर्श से मेरे रोमांच हो आये थे ... अुसकी मधुर स्मृति अब भी मेरे मन को गुदगुदा रही है।

अब थाली में रोटी परसने पर, यह शैतान बच्चे ज़रूर कुछ न कुछ पूछ बैठेंगे।

प्रभाकर चुपचाप, नीचे सिर झुकाये खाना खा रहा था। वह खाना क्या खा रहा था, खाना खाने का नाटक भर कर रहा था। दाल चावल का अेक निवाला हाथ में लिये वह कितनी देर से, न जाने किस सोच में डूब सा बैठा है यह क्या मुझे दिखायी नहीं दे रहा है! अुसकी सूरत ही बता रही है कि नौकरी की तलाश में, दिनभर दरदर की ठोकरें

खाकर बेचारा निराश हो कर लौटा है। भला नौकरी भी कहीं अितनी आसानी से मिल जाती है। और अुसमें भी, प्रभाकर ज्यादा पढ़ा लिखा भी नहीं है। आजकल कॉलेज की प्रथम वर्ष की परीक्षा को कौन पूछता है!

दिल में ये तमाम विचार अुठ रहे थे। प्रेमा की थाली में मैंने देखा। वह चावल खा चुकी थी। मैंने चुपके से आधी रोटी अुसकी थाली में परस दी। तुरंत अुसने कहा, 'जीजी, मेरी सालगिरह पर तुम हलुआ पूरी बनानेवाली थी न?'

हे अीश्वर! तुमने मुझे मेरे दोनों भाअीबहन की छोटी बहन क्यों न बनाया? बचपन में, दोनों से बड़ी होने पर मुझे कितनी खुशी होती थी, कितना गर्व था। लेकिन आज –

कुछ तो जवाब देना ज़रूरी था। अिसलिये मैंने प्रेमा से कहा, 'मैं थोड़े ही बनानेवाली थी हलुआ पूरी?'

'तब कौन बनानेवाला था?'

'हलुआ पूरी तो हमें भगवान् देनेवाले थे।'

अनजान बालकों की बहस बंद करने के लिये भगवान् का नाम भी कितना काम आता है। लेकिन प्रेमा अब दूधमुँही बच्ची तो नहीं थी। आहिस्ता से अुसने पूछा, 'तब भगवान् ने क्यों न दी हमें पूरनपूरी?'

'अुनके घर अचानक बहुत से मेहमान आ धमके। वे लोग ही सब पूरनपूरी चट् कर गये!'

मेरा यह अजीब सा जवाब सुनकर प्रेमा खिल खिलाकर हँस पड़ी। लेकिन प्रभाकर तो अबतक वैसा ही गुमसुम बैठा था। अुसकी थाली लगभग परसी की परसी ही दिखाअी दे रही थी। मैंने अुससे पूछा, 'क्या बात है, प्रभाकर? हाथ रोक कर क्यों बैठे हो?'

'न जाने क्यों, जीजी; आज तो मुझे भूख ही नहीं है।'

'भूख क्यों नहीं है? क्या तुम बूढ़े हो चुके?' मेरी बात सुनकर प्रेमा को और भी जोश आया। अुसने कहा, 'भैया, किसीकी थाली में रोटी बचने पर वह अुसकी चुटिया से बाँध दी जायेगी।'

अब कहीं प्रभाकर की कली खिली। अुसने कहा, 'यहाँ चुटिया है किस कमबख्त के सिर पर!'

हम तीनों भी जी भरकर हँस पड़े। मैं खाना खाने के लिये बैठी। प्रभाकर अपने कमरे में जाकर प्रेमा को गाना सिखाने लगा। --

*'तुझ्या गळां माझ्या गळां
गुंफूं मोत्यांच्या माळा!
तुज कंठी, मज अंगठी
अणखी गोफ कुणाला?'

अिस गीत को सुनकर, मेरी समझ में नहीं आने लगा कि हँस दूँ या रो पड़ूँ। मोतियों की माला – अंगूठी – सोने की अनमोल जंजीर ... भला प्रेमा ने आजतक, सपने में भी कभी क्या अिनमें से कोअी आभूषण देखा होगा? मेरी नटखट, अबोध प्रेमा! कुछ ही समय पहले पूरनपूरी के लिये रूठकर वह रूआँसी सी हो गयी थी! और अब मोतियों की माला पिरोने के सपने देखते हुअे वह मुस्करा रही है!

बच्चों को तो यूँ भी, कोअी भी गीत पसंद आता ही है। अुस गीत के मतलब से अुन्हें कोअी मतलब नहीं। मेरे बचपन में, मैं भी समय बे समय, गाने रटा करती थी। अुन दिनों विशेष त्यौहारों के अवसरों पर, सार्वजनिक संगीत समारोहों का आयोजन किया जाता था। अेक साल मैंने भी अुसमें हिस्सा लिया। तमाम गाँव अुमड़ पड़ा था मेरे गाने सुनने के लिये। लेकिन हमारी पार्टी में से एक जवान लड़की सिनेमा में चली गयी और अुसके बारे में हज़ार मुँह से हज़ार बातें सुनाअी देने लगीं। दादी माँ ने मुझे दुबारा अैसे समारोहों में हिस्सा लेने से मना कर दिया। अिसके दो तीन साल बाद, संगीत के क्लास से भी मेरा नाम कटवा दिया गया। मुझे संगीत से, कितना प्यार था! गाना सीखने के लिये मैं किसतरह छटपटाती थी। इंदू – जो अब सिनेमा में काम करती थी, मज़ाक में मुझसे

* 'तुम मोतियों का हार पहनो मैं भी मोतियों की माला पहनूँगा! तुम सोने का कंठा पहनोगी मैं अंगूठी पहनूँगा। लेकिन बहन यह तो बताओ कि वह सोने की अनमोल ज़ंजीर तुम किसे पहनाओगी?'

कहा करती, 'सुशीला, जब तुम गर्भ में थी, तब तुम्हारी माँ शहद ज़्यादा खाती थी और शायद अिसी से तुम्हारी आवाज़ में अिस तरह गज़ब की लोच और मिठास भरी है।'

लेकिन दादी माँ किसी हालत में गाने की मेरी पढ़ाई जारी रखने के लिये अब तैयार नहीं थी। अुसका ख्याल था कि गाना सीखकर मैं कहीं बदचलन न बन जाअूँ, नाटक में या सिनेमा में काम करना चाहूँ, और न जाने क्या क्या करने लगूँ। दूध का जला मठा भी फूँककर पीने लगता है। दादी माँ का भी यही हाल था। दादी माँ के अेक लड़का पैदा होने पर, दादाजी को न जाने क्या सनक सवार हुअी और वे किसी नाटक मंडली में भरती हो गये। शुरू शुरू में स्त्री और लड़के की जीविका के लिये वे दस पाँच रुपये भेजते थे; लेकिन बाद में वे मदिरा देवी के फेर में पड़ गये। घरबार सब कुछ भूल गये। दस बारह साल में स्त्री और लड़के की अुन्होंने सूरत तक न देखी। बाद में अेक दिन दादी माँ के नाम एक चिट्ठी आयी — अुसमें दादाजी की मृत्यु का समाचार लिखा हुआ था।

दादी माँ ने हिंमत के साथ अुस मुसीबत का मुकाबला किया। कुछ छोटे मोटे ज़ेवर थे, अुन्हें बेचकर लड़के को मैट्रिक तक पढ़ाया। बाद में अुसे नौकरी भी मिल गयी, अुसका ब्याह हुआ। कुछ ही दिनों में वह दो बच्चों का पिता भी बन गया। नाती और नातिन के जन्म के बाद, दादी माँ के हाथ मानों आसमान को छूने लगे। लेकिन क्रूर भाग्य से भी क्या किसी का सुख देखा जाता है। प्रभाकर तो खैर दो तीन ही साल का था। लेकिन मेरी आयु अुस वक्त आठ नौ साल की होने के कारण वह घटना मुझे अबतक अच्छी तरह याद है। अेक दिन की बात है। रात का समय था। कुछ कार्यवश पिताजी घर से बाहर गये ... और वे दुबारा घर लौटे ही नहीं। बिना कुछ खाये पीये, माँ और दादी माँ प्यासी आँखों से अुनके लौट आने की प्रतीक्षा करते बैठी रहीं। सबेरे मेरी आँख खुलने पर मैंने देखा कि दिन कब का निकल चुका है और रो रोकर माँ और दादी माँ की आँखें फूल गयी हैं! स्कूल में जाने पर, तरह तरह के जलेकटे प्रश्न पूछकर लड़कियों ने मुझे स्कूल में बैठना मुश्किल कर दिया। बाद में पता

चला – पिताजी फ़रार हो गये थे। अुनके दफ़्तर के रुपयों में कुछ गोल-माल हो गया था ... और पिताजी पर ग़बन का अभियोग लगाया गया था।

यह सब कार्रवाअी किसी दूसरे क्लर्क की थी। लेकिन अुसका दोष, बेचारे बेक़सूर मेरे पिताजी के माथे मढ़ दिया गया था! पिताजी सीधेसादे व्यक्ति थे। दादी माँ हमेशा कहा करती, 'मनुष्य को चाहिये कि बिल्कुल भगवान् भी न बने और न शैतान ही। भगवान् होने पर भी, भोले-भाले होने के कारण शिवशंभू की स्त्री तक का किसी के द्वारा हरण किया गया और किसी के रावण बनने पर, अुसकी सोने की लंका ख़ाक में मिला देने के लिये किसी को प्रभू रामचंद्रजी का अवतार धारण करना पड़ा।'

दादी माँ बहुत ही बुद्धिमान और बातूनी स्त्री थी! पाँच सात साल तक पिताजी का कोई पता नहीं चला लेकिन माँ और दादी माँ ने अिस अवधि में तमाम घरगृहस्थी का बोझ सम्हाल लिया। किन्तु दादी माँ में जो हिंमत थी, अुसका माँ में नितांत अभाव था। वह दिन-ब-दिन कमज़ोर ही होती चली जा रही थी। किसी दिन, संध्या समय की बात है। अेक दढ़ियल बाबाजी हमारे दरवाज़े में आकर खड़े हुअे। मैं अुन्हे वहाँ से खदेड़ने की कोशिश कर ही रही थी, कि अुसने कहा, 'बिटिया, अिस तरह बिगड़ती क्यों हो? डरो नहीं! मैं तो तुम्हारा पिता हूँ।'

पिताजी ही थे वे। अिसके अनंतर, चार छः ही रोज़ वे घर में रहे। लेकिन, अुन्हें छिपाकर रखने की चेष्टा में माँ और दादी माँ के नाकों दम हो गया। और अिसपर तुर्रा यह कि वे आठों पहर सब पर नाराज़ ही रहा करते थे। पिछले छः सात साल अुन्होंने किसी बाबाजी के साथ रह-कर बिताये थे। अुनकी ज़ुबान को हलुवापूड़ी और मिठाअी खाने का चसका लगा था। घर का रूखा-सूखा भोजन अब अुन्हें पसंद नहीं आता था। माँ को तो अुन्होंने तरह तरह से तंग किया। बात बात में जली कटी सुनाकर माँ का कलेजा अुन्होंने छलनी बना दिया। जो भी मुँह को आता वे बकने लगते – 'तुम जैसी चुड़ैल के साथ कौन गृहस्थी करेगा? हमारे बाबाजी के पास कअी ख़ूबसूरत नौजवान शिष्याअें आती हैं। बाबाजी की

तृप्ति हो जाने पर शेष प्रसाद तो हमीं को मिलता है... फिर चाहे वह बर्फी हो या लड़की !'

बेचारी माँ ! वह गौ माता ही नहीं, स्वयं गायित्री थी। अुसने कभी नाराज़ी से, नज़र अुठाकर पिताजी की ओर नहीं देखा था, तब अुनसे जबान लड़ाने की बात तो दूर रही।

लेकिन पिताजी के मुँह से निकले गंदे शब्दों को सुनकर मेरे तनबदन में आग सी लग गयी। रात के बारह बज चुके थे, तब भी मैं छटपटा रही थी। किसी तरह नींद ही नहीं आ रही थी, अिसलिये, अंधेरे ही में मैं दादी माँ के बिस्तर की ओर गयी। हाथ से टटोल कर देखना चाहती थी कि मेरा हाथ धोखे से दादी माँ की आँखों को छू गया। अुसकी आँखों से अविराम गति से आँसू बह रहे थे।

दादी माँ को आँसू बहाते आजतक मैंने कभी नहीं देखा था। मुझे भी रोना आने लगा। अुसके गले से लिपट कर मैं रो पड़ी। लेकिन जैसे ही मुझको रोते देखा, दादी माँ ने अपने आँसू पोंछ डाले। मुझे प्यार से सहलाते और मेरी पीठ थपथपाते अुसने कहा, 'रो नहीं बिटिया। तुम क्यों रोती हो। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह शैतान कभी बहू को सुख-शांति से रहने नहीं देगा। अुसे अैशआराम की लत जो लगी है। लेकिन अुसके ये चोंचले मैं चलने नहीं दूँगी – देखना, दिन निकलते ही अुसे घर से बाहर नहीं कर दिया तो – वह मेरा अपना लड़का है – तब भी क्या हुआ —'

दादी माँ ज़ोरों से खिसक पडी। अंधेरे ही में प्यार से मेरे मुँह पर हाथ फेरते हुअे स्नेहसिक्त स्वर में अुसने कहा, 'सुशीला बिटिया, आज से मेरा लड़का तुम हो ! प्रभाकर तो अबतक अबोध बालक है ! जबतक वह बड़ा नहीं होता... नाटक का पेशा अख्तियार कर मेरे पति ने अपने आपकी जिंदगी बरबाद कर ली। जोगी, जतियों के संग में रहकर मेरा लड़का आदमी से जानवर बन गया। लेकिन मेरा पोता हरगिज़ अैसा नहीं निकलेगा। हम तीनों मिलकर अुसे आदमी बनायेंगे – वह ख्याति प्राप्त करेगा। हमारा प्रभाकर प्रोफ़ेसर बनेगा – तहसीलदार बनेगा – मुनसीफ़ बनेगा—'

हम तीनों के बूतेपर दादी माँ ने अिस नये मनोरथ की सृष्टि की थी— लेकिन तीनों में से माँ तो, आगे चलकर साल डेढ़ साल ही के बाद चल बसी और अब रहीं हम दोनों ही !

दूसरे दिन दादी माँ पिताजी को घर से बाहर कर देना चाहती थी, लेकिन अुससे पहले ही, स्वयं पिताजी ही घर से चले गये। और कुछ ही महीनों बाद, माँ की प्रसूति का समय निकट आ पहुँचा। प्रेमा पैदा हुअी। हूबहू माँ की सूरत पायी थी अुसने। अुसके प्यार दुलार में मा, दादी माँ और मैं — हम तीनों ने पिताजी के घर छोड़कर चले जाने का दुख भुला दिया। यह लड़की — मेरी नन्ही बहन थी तो गुड़िया जैसी खूबसूरत, लेकिन पहले ही से कमज़ोर मेरी माँ को अिस वक्त की प्रसूति ने और भी ज़्यादा कमज़ोर बना दिया।

और अंत में, अेक दिन हम सबको रुलाकर माँ चल बसी। माँ की मृत्यु के बाद, कुछ ही दिनों के अनंतर किसी बाबाजी के मठ में पिताजी की भी मृत्यु हो गयी।

लेकिन दादी माँ तो हिम्मत हारना जैसे जानती ही नहीं थी। दो साल की, बिना माँ की बच्ची प्रेमा ! दादी माँ ने किस होशियारी के साथ अुसकी परवारिश की। किसी बात में अुसे कम पड़ने नहीं दिया। मज़दूरी के लिये दूसरों के घर जाना दादी माँ को पसंद नहीं था। वह रात के वक्त लोगों के यहाँ से गेहूँ वग़ैरा ले आती, और बड़े तड़के ही मुझे नींद से जगाकर, दिन निकलने के पहले ही अुसे पीसकर घर घर पहुँचा देती थी। सीना-पिरोना, किसी के लिये जलपान की चीज़ें बनाना, आदि सब काम वह चुपचाप करती थी। दुनियाँ के मोहन-भोग की अपेक्षा दादी माँ के हाथ की बनी रूखी-सूखी रोटी ही हम भाअी-बहनों को अधिक प्रिय थी।

लेकिन प्रभाकर को तहसीलदार या मुनसीफ़ बना देखने के लिये दादी माँ जीवित न रही। पिछले साल जेष्ठ में प्रभाकर कॉलेज में पढ़ने लगा और दादी माँ को भगवान् के घर का बुलावा आया। कितने शांतिपूर्ण ढंग से दादी माँ चल बसी। उसकी मृत्यु के अेक ही रोज़ पहले की घटना है — दादी माँ हमें छोड़कर चली जा रही है अिस कल्पना से हम तीनों रो रहे थे। हम खाना नहीं खा रहे हैं — हमने खाना तक नहीं बनाया

यह देख, लड़खड़ाते कदमों से वह उठी, मेरा हाथ पकड़कर, मुझे रसोअी घर में ले आयी – मुझे खिचड़ी बनाने के लिये मजबूर किया और छलछलाती आँखों से हमारी ओर देखते हुअे वहींपर बैठी रही ।

वहाँ भीतर के कमरे में प्रेमा गाना गा रही थी और यहाँ खाना खाने के लिये मैं बैठ ही रही थी कि हाथ का निवाला हाथ ही में रह गया और मन कल्पना के पंख पर आरूढ़ हो विगत जीवन की सैर कर आया।

वह भी बेचारा क्या करता ? दो पहर में मौसी की चिठ्ठी आयी थी और उसे पढ़ चुकने के बाद दादी माँ का अेक अेक वाक्य रह रह कर याद हो आने लगा । अुसके अंतिम शब्द – 'सुशीला, प्रभाकर और प्रेमा की अब तुम दीदी नहीं – माँ हो । '

माँ ? माँ बनना स्त्री के जीवन की कितने आनंद की घटना है ! लेकिन तब, दो पहर में आयी अुस चिठ्ठी का जवाब लिखते हुअे मेरा दिल क्यों छटपटा रहा था । मौसी के पत्र का जवाब ही न दूँ, अैसा किसलिये लग रहा था ?

और अैसा सोचने से फ़ायदा ही क्या था ? आखिरी वक्त मुझे अपने निकट खींचकर क्षीण स्वर में दादी माँ ने कहा था, ' बिटिया, स्त्री की पूजा ज़रूर होती है; लेकिन उसकी पूजा तो अुसके अपने घर ही में होती है । भाग्य में लिखा होगा तो पति, पुत्र कोअी न कोअी अुसके चरणों में पत्र पुष्प समर्पित करते हैं । लेकिन घर के बाहर तो काँटे और शोलों ही का मुकाबला अुसे करना पड़ता है —'

प्रेमा का गाना अब बंद हो चुका था। थाली छोड़कर मैं अुठी और भीतर वाले कमरे में झाँककर देखा । प्रभाकर के हाथ में कोअी पुस्तक थी लेकिन अुसे हाथ में लिये ही वह निश्चल भाव से, छत की ओर टकटकी लगाये बैठा था । आहट पाते ही अुसने पीछे मुड़कर देखा। कितना करुण भाव था अुसकी अुन निगाहों में ! अुसी क्षण मैंने सोचा कि जवाब में मैं ने मौसी को हाँ लिख दिया यह ठीक ही किया ।

प्रभाकर अुठकर मेरे निकट आया और सहसा सिसक पड़ा । कहा – ' दीदी, मैं तो क्लर्क भी बनने को राज़ी हूँ । लेकिन – '

मुस्करा कर मैंने कहा ' मेरा प्रभाकर क्लर्क नहीं बनेगा । वह तहसील-

दार बनेगा – मुनसीफ़ बनेगा ।'

मैं प्रभाकर और प्रेमा की सिर्फ़ माँ ही नहीं, दादी माँ भी थी। दादी माँ हमेशा प्रभाकर के विषय में अैसा ही कहा करती थी।

लेकिन जैसे ही, हैरान होकर प्रभाकर मेरी ओर देखने लगा, वैसे ही मैं अपनी दिखावे की हिम्मत खो बैठी। मौसी की चिठ्ठी मैं अुसे पढ़ने के लिये देना चाहती थी। कितनी मामूली बात! लेकिन वह चिठ्ठी अुसके हाथ में थमाते हुअे मेरा हाथ काँप रहा था। अुस पत्र में लिखा अेक अेक अक्षर मुझे कंठस्थ हो गया। लेकिन जैसे जैसे प्रभाकर वह चिठ्ठी पढ़ने लगा अुसके चेहरे पर क्रोध टपकने लगा। और वैसे वैसे उस चिठ्ठी में लिखा अेक अेक शब्द मेरे कानों को खौलते हुअे तेल के समान प्रतीत होने लगा।

'चि. सुशीला खुश रहो।

कुछ दिन पहले जिन सज्जन के साथ तुम्हारे ब्याह की बातचीत के बारे में मैं ने तुम्हें लिखा था, वे एक ही दो रोज़ में अीरान से लौटे रहे हैं। अुनकी उम्र है सिर्फ़ पैंतालीस साल की। तुम्हारी उम्र के दुगनी भी नहीं। दो तीन साल कम ही है। मेरे ब्याह में मैं आठ साल की थी और तुम्हारे मौसाजी थे अठारह साल के। मेरी आयु से इनकी आयु, दुगनी से भी ज़्यादा था। लेकिन तब भी, हमारी गृहस्थी सुख-शांति से परिपूर्ण थी। यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा।

यह सज्जन अीरान में रहते हैं। अुनकी पहली स्त्री का देहान्त हो चुका है, और अुस स्त्री से, अुनके सिर्फ़ अेक ही लड़का है। अुम्र में वह तुमसे ज़्यादा से ज़्यादा दो चार साल बड़ा होगा। और यह तो हमारे लिये खुशी की बात है। क्योंकि ब्याह के बाद तुम जल्द ही अपने लिये बहू ला सकोगी। जिन महाशय का मैंने जिक्र किया है, अुन्होंने अीरान में लगभग पचीस हज़ार रुपये कमाये हैं। अब बस सिर्फ़ तुम हाँ कहो कि तुम्हारी किस्मत ही चमक अुठेगी। और फिर, बड़ी जायदाद की मालकिन सुशीला रानी को अपनी ग़रीब बेचारी मौसी की याद तक न आयेगी!

अपने पत्र में तुम ने पूछा था कि क्या प्रभाकर की पढ़ाअी बंबअी में हमारे यहाँ हो सकेगी? अुसे ज़्यादा पढ़ा लिखाकर आदमी बनाना निहायत

जरूरी है। आजकल मामूली मैट्रिक तक पढ़े लिखे को पूछता ही कौन है ? लेकिन तुम तो जानती ही हो कि हमारे ही बच्चों की पढ़ाअी में यहाँ नाकों दम हो रहा है। फ़ीस..., किताबें..., बाप रे बाप !

यदि यह ब्याह तुम्हें मंजूर हो, तो प्रभाकर की पढ़ाअी की समस्या भी अपने आप हल हो जायगी। तुम्हें किसी बात की दिक्कत नहीं अुठानी पड़ेगी। सब कुछ ठीक हो जायगा।

सच बताअूँ तुम्हें सुशीला ? आजकल अच्छे, अच्छे घरों की लिखी पढ़ी लड़कियों पर कुँआरी रहने की सनक सवार है। अैसी लड़कियाँ तमीज़ से रहना भी जानती हैं। राम नाम भजो। ये तो रंगरलियाँ अुड़ाना खूब जानती हैं। लेकिन बाद में अिन्हें या तो किसी डॉक्टर की शरण लेनी पड़ती है, या पंढरपुर जैसे तीर्थयात्रा के किसी शहर जाकर वहाँके किसी अनाथालय में मुँह छिपाना पड़ता है। और हरेक भली मौसी तो यही चाहेगी कि अुसकी भानजी अैसी कुलकलंकिनी कदापि न निकले। तुम्हारी पढ़ाअी भी वैसे तो नहीं के बराबर है। अंग्रेज़ी पाँचवीं छठीं पढ़ी लड़की को आजकल कोअी नहीं पूछता। बुरा न मानो सुशीला, लेकिन रूप भी तुम्हारा मामूली ही है। तुम खुद समझदार हो ! जानती हूँ कि जब से तुम्हारी दादी माँ चल बसीं, तब से तुम अकेली ही ने गृहस्थी का बोझ अपने कंधोंपर अुठा लिया है। और अिसी से, मेरा ख्याल है कि अिस विषय में तुम्हें और भी विस्तारपूर्वक कुछ लिखने की कोअी ज़रूरत नहीं है।'

जैसे जैसे प्रभाकर पत्र पढ़ रहा था, उसका चेहरा क्रोध से तमतमाने लगा। अंत में, मेरी ओर देखकर उसने कहा, 'दीदी, अुस चिठ्ठी का जवाब—'

अिसके पहले कि मैं कुछ कह सकूँ, फाड़कर अुस चिठ्ठी के अुसने टुकड़े टुकड़े कर डाले। अुसके हाथ से अुन टुकड़ों को छीनकर मैंने कहा, 'प्रेम-पत्रों को अिस तरह फाड़ नहीं डालते, प्रभाकर !'

'मौसी है तो क्या हुआ ? अुस में अिन्सानियत तनिक भी नहीं है। अुससे पूछो तो, क्या अपनी लड़की का ब्याह कर सकती है वह अैसे बूढ़े खूसट के साथ ?'

● ● ●

५

दासोपंत

भअी वाह ! पिछले पचीस साल में अिस बंबअी का तो जैसे कायापलट ही हो गया है । बोरीबंदर से अुतरकर मैं सीधा अिस नारासिंहाश्रम में आया । लेकिन मुझे तो रह रह कर अैसा आभास हो रहा था कि कहीं धोखे से, बंबअी आने के बदले मैं लंदन तो नहीं आ पहुँचा । यह तो खैर अच्छा हुआ कि नारसिंहाश्रम के नाम की तख्ती दरवाज़े पर ही लगी थी । वरना मैं ज़रूर समझ बैठता कि मैं किसी अीरानी होटल में ही निवास के लिये आया हूँ । मैनेजर के दफ्तर में, सामने ही रेडिओ रखा दिखाअी दिया । अीरान जाने के पहले भी मैं अिसी आश्रम में रहता था । अुस वक्त, अिस भले आदमी से ग्राहकों ने लाख बार अनुरोध किया था कि अुनके मनबहलाव के लिये एक ग्रामोफ़ोन खरीदा जाय । लेकिन जनाब टस से मस न हुअे । ग्रामोफ़ोन नहीं खरीदा, नहीं खरीदा । ग्राहकों के नाकों दम कर देने पर यह कम्बख्त फीस्ट के दिन कहीं से ग्रामोफ़ोन माँग लाता था और बार बार अुन्हीं रिकार्डों को बजा कर ग्राहकों का मुँह बंद कर देता था । 'जमना तट'—शायद अैसा ही कोअी गीत अुस ज़माने में लोगों को बहुत प्रिय था । और वास्तव में, अुस गाने में ग़ज़ब की मधुरता थी भी ।

लेकिन मैनेजर, अुसी अेक रिकार्ड को अितनी बार दुहराया करता था कि अंत में अूबकर, अेक बार किसी ने अुस से कहा भी था, ' मैनेजर साहब, अिस जमना के तट की मिट्टी अब बिल्कुल ढह चुकी है। बचकर रहिअे, वरना, सहसा पैर फ़िसलकर, कहीं जमना में आप गोते खाते दिखाअी न दें।'

मैनेजर से गप्पें लड़ाते हुअे, अब के अेक बढ़िया-सा रेडिओ खरीदने का मैं ने दिल में निश्चय किया। हाँ! आखिर यहाँ हमारा और हमारी होनेवाली श्रीमतीजी का समय तो कटना चाहिअे। सबेरे स्नानसंध्या, पूजा-अर्चा, और शाम को देवदर्शन में मेरे चार घंटे तो आसानी से कट जायेंगे लेकिन श्रीमतीजी के लिये दिलबेहलाव का कोअी साधन तो चाहिअे। वरना ' सिनेमा देखने चलो ' की रट लगा कर वे मेरा दिमाग़ चाट जायेंगी। ये सिनेमा के चोंचले हमें तो भअी, क़तअी पसंद नहीं हैं। अपनी स्त्री के बगल में कौन बैठा है, अिसे अंधेरे में पतिराज देख नहीं पाते। अिसे तो छोड़िये, लेकिन सामने परदे पर दिखाअी देनेवाले दृश्य भी क्या किसी भले आदमी के देखने काबिल होते हैं। चूमना – प्यार करना – बाहों में भर लेना – मैं पूछता हूँ कंबख्तो, क्या दुनियाँ में अिन बातों को छोड़कर दिखाने के लिये कुछ और है ही नहीं। और यदि तुम चुंबन का दृश्य दिखाना ही चाहते हो, तो छोटे बच्चों का चुंबन क्यों नहीं दिखाते?

कमरा दिखाने के लिये कुली के साथ मैनेजर अूपर गया था, वह लौट आया। अब अुसका चेहरा मैं बिल्कुल निकट से देख पाया। जब मैं यहाँसे अीरान गया था, तब अुसके सर का अेक भी बाल सफ़ेद नहीं हुआ था और अब देखता हूँ तो अुसके सर पर खासा गंज नज़र आ रहा था।

' हाँ, तो साहब, मेरा नाम लिख लीजिये।' मैंने अुससे कहा।

' मुझे याद है। भला आपका नाम मैं कभी भूल सकूँगा, बाबूजी! आप तो हमारे यहाँ हर साल, सपरिवार बरार से आते हैं न – ?'

' सपरिवार आते हैं?' बेवकूफ़ कहीं का! कुछ भी तो याद नहीं है और कहता है, ' मुझे आपका नाम याद है '। सोचा कि कसकर कान अुमेठते हुअे अिस गधे से कह दूँ कि ' मेरा नाम है दासोपंत देव और मैं

पचीस साल के बाद औरान से लौट रहा हूँ'! लेकिन फिर सोचा, हटाओ भी! यह तो अब बिल्कुल बूढ़ा, ज़अीफ़ हो चुका है। अुमेठते हुए, कहीं टूटकर कान हाथ ही में न आ जाय!

मेरा नाम सुनकर वह हैरान रह गया। लेकिन तुरंत, ठठाकर हँसते हुअे अुसने कहा, 'अच्छा? तो आप हैं दासोपंत देव! देखिये साहब! मैं भी कैसा बेवकूफ़ हूँ। बरार से अधेड़ अुम्रवाले एक साहब हर साल हमारे यहाँ आते हैं। अुनकी और आपकी सूरत अिस क़दर मिलती जुलती है कि क्या कहूँ!'

कैसा अजीब आदमी है यह मैनेजर! ये महाशय खुद बूढ़े हो चुके हैं, और अिसी से अिन्हें और लोग अधेड़ अुम्र के दिखाअी देने लगे हैं।

अशोक के नाम अेक टेलिग्रैम लिखकर मैं ने अुसके पास दे दिया और सीधा अूपरवाले मेरे कमरे में जा पहुँचा। कमरे की खिड़की में खड़े होने पर बाहर का दृश्य बड़ा ही सुहावना दिखाअी दे रहा था। देखिये न, सिर्फ़ पच्चीस साल में लोगों के रहन सहन में कितना फर्क पड़ जाता है। अुन दिनों नौकरी की तलाश में मैं बंबअी आया था, लेकिन तब भी मेरे सिर के बाल वही पुराने ढंग के थे और मैं ने सिर पर चुटिया रखी थी। लेकिन अब अिस बंबअी के रास्ते से होकर, नंगे सर गुज़रने वाले भले आदमियों में से किसी अेक के सिर पर क़सम खाने के लिये भी चुटिया दिखाअी नहीं देती है। अच्छे घर की, लगभग चालीस से भी ज़्यादा अुम्रवाली औरतें नये फैशन्स से, बिना कच्छ की धोती पहने रास्ते से अिठलाती हुअीं जाती दिखाअी दे रही हैं। अिसे घोर कलजुग नहीं तो क्या कहा जाय! खैर! मुझे क्या मतलब है दुनिया के लोगों से। श्रीमतीजी वैसे कोअी ज़्यादा पढ़ी लिखी नहीं है। अच्छे भद्र परिवार की लड़की है। लड़की के मौसाजी ने तसवीर भेजी थी और अुसे सिर्फ़ देखते ही मैं भाँप गया कि लड़की बड़ी ही विनम्र स्वभाव की मालूम होती है। सोचा, शुभस्य शीघ्रम्! लड़की को देखने, पसंद करने के तमाशे की ज़रूरत ही क्या है? वहीं से मैं ने मेरी स्वीकृति लिख कर भेज दी।

किसी ने बाहर से दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़ा खोलकर देखता हूँ तो हमारी होनेवाली श्रीमतीजी के मौसाजी बाहर खड़े दिखाअी दिये।

अुन्हों ने मुझे लड़की के हाथ की लिखी चिट्ठी दिखाअी। लिखा था, 'मैं खुशी से ब्याह के लिये राजी हूँ'। खैर! यह तो अच्छा ही हुआ। वरना ब्याह के बाद कोअी कंबख्त झूठमूठ ही कुछ का कुछ कहकर अुसका दिल मोटा कर देता।

पत्र यहीं छोड़कर कुछ देर के बाद जनाब मौसाजी तो चले गये। लेकिन अब किसी तरह मेरा वक्त कटते नहीं कट रहा था। अुस बेचैनी को दूर करने के लिये, यूँ ही संदूक खोला और लड़की की तसवीर निकालकर अुसे गौर से देखने लगा। सुशीला! नाम तो भअी, क्या खूब रखा है लड़की के माता-पिताने। ब्याह के बाद मैं भी श्रीमतीजी का वही नाम बह़ल रखूँगा। आजकल लड़कियों के नाम सिनेमा की अभिनेत्रियों के या अमरकोश के नामों जैसे रखने की सनक लोगों पर सवार है। अिम्तिहान पास करनेवाली लड़कियों और नव-दंपति की, समाचार-पत्रों में छपनेवाली तसवीरों के नीचे छपे नामों की ओर अेक नज़र डालिये! कांचनमाला — सुवर्णप्रभा — हेमलता! कोअी कहेगा ये लड़कियों के नाम नहीं — ये तो विभिन्न भस्मों ही के नाम हैं!

संदूक में अशोक की बचपन की अेक तसवीर थी। अुसे निकाल कर, मेज़ पर सुशीला की तसवीर के निकट रख दिया। यूँ तो मैं कोअी कवि नहीं हूँ। लेकिन अुन दोनों तसवीरों की ओर निगाह जाते ही, बचपन में याद किये शाकुंतल के गीत की अेक पंक्ति सहसा याद हो आयी! 'वृक्षलता अिन दोनों की जोड़ी यह कितनी सुंदर!' और दूसरे ही क्षण मैंने सोचा, क्या कालिदास और क्या अुनके चचा शेक्सपीअर! अिन सब के सिरपर युवक-युवती की ही जोड़ी लगाने की सनक सवार रहती है। लेकिन क्या युवक-युवति की या पति-पत्नी की जोड़ी के समान माता और अुसका नन्हामुन्ना तथा पिता और अुसकी अबोध बालिका की भी जोड़ी देखकर मन प्रसन्नता से झूम नहीं अुठता? मैं हैरान हूँ कि यह बात अिन कवियों के दिमाग़ में क्यों नहीं आती? दिल चाहने लगा कि कालिदास की वृक्ष-लतावाली अुस काव्यपंक्ति में अुचित संशोधन करूँ। सुशीला और अशोक की तसवीरों की ओर गौर से देखते हुअे हलकी आवाज़ में मैं गुनगुनाने लगा 'पुष्पलता अिन दोनों की जोड़ी यह कितनी सुंदर!'

मैनेजर ने समाचार-पत्रों का ढेर का ढेर लाकर कमरे में पटक दिया। अशोक की तसवीर मेज़ ही पर पड़ी रहने दी और मैं समाचार-पत्र पढ़ने लगा। यूँ तो सुशीला की भी तसवीर मेज़ पर पड़ी रहती तो कोअी हर्ज नहीं था। लेकिन सोचा कि कहीं मुलाक़ातियों में से कोअी आकर, पूछ न बैठे कि यह तसवीर किसकी है? और तब—

यहाँ के लगभग सभी अख़बार आजकल भविष्य-वाणी छापने लगे हैं। अीरान में अिस तरह भविष्य के पीछे लोग पागल नहीं थे। लेकिन मैं जानता था कि यहाँ किसी न किसी दिन वह होकर ही रहेगा। जिस वक्त मैं अीरान गया, तब समाचार-पत्रों के संपादक और अपने आप को बुद्धिमान कहलानेवाले, पढ़े लिखे लोगों को बकते हुअे मैंने सुना था – 'भविष्यवाणी तो एक पागलपन है, सनक है। ग्रहराशी आदि सब झूट हैं'। जान पड़ता है कि अब अिन साहबों ने शनिदेवता के कोप का प्रसाद चख लिया है। अिन संपादकों से कहना, कि 'देवी देवता झूट हैं', 'धर्म प्रलाप है' कहकर, अग्रलेखों में, गला फाड़कर चाहे जितना चीखते रहो, लेकिन मेरे भाअियो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि अब समाचार-पत्रों में भविष्यवाणी को बिना स्थान दिये कोअी चारा ही नहीं है।

अेक अेक समाचार-पत्र अुठाकर मेरा राशीफल मैं देखने लगा। पहले भविष्य का आरंभ ही काव्य की अिस पंक्ति से हुआ था।

* प्रेमावांचुनि सर्व सुनें
जग भासे बापुडवाणें!

मेरी समझ में नहीं आया कि भविष्य लिखनेवाला कवि है या ज्योतिषी। हरअेक राशी के लिये अेक अेक कविता-पंक्ति प्रयुक्त की गयी थी। लेकिन अितना तो ज़रूर मानना पड़ेगा कि अुस भविष्य में कुछ कुछ सचायी ज़रूर थी। जान पड़ता है कि मेरे मन का भाव ज्योतिषीजीने सही सही भाँप लिया था।

* 'प्यार बिना जीवन सूना
सूना है सब संसार!...'

दूसरा समाचार-पत्र खोलकर मेरी राशी का भविष्य देखा। यह ज्योतिषीजी बड़े ही तत्त्वज्ञ दिखाअी दिये। लिखा था, 'मनुष्य अपने मन की थाह कभी पाता ही नहीं; अिसलिये जल्दबाजी से काम लेना ख़तरनाक है। शादी-ब्याह के मामले में शीघ्रता न कीजिये।'...अिसी से तो कहते हैं कि दार्शनिक बेवक़ूफ़ होते हैं। जनाब लिखते हैं कि शादी-ब्याह के काम में शीघ्रता न कीजिये। ब्याह के लिये नहीं तो क्या स्वर्ग-लोक सिधारने के लिये शीघ्रता की जाय?

मसूरकर ज्योतिषीजी की बनाअी लंबीचौड़ी जन्म-कुंडली मेरे संदूक में पड़ी है। अुसमें लिखा हुआ अेक अेक अक्षर आजतक सच साबित हुआ है। तब अैसे बेवक़ूफ़ी से भरे भविष्य पढ़कर बेकार ही अपना दिमाग़ क्यों ख़राब कर लूँ, कहकर मैंने तमाम समाचार-पत्रों को अेक ओर फेंक दिया और चुपचाप पलंग पर लेटा रहा। यूँ ही आँखें मूँद ही रहा था कि सुशीला की तसवीर और अुसके निकट ही रखी किसी अबोध शिशु की तसवीर मेरी आँखों को दिखाअी देने लगीं और अुसे देख मुझे हँसी आने लगी।

अशोक जबतक बंबअी नहीं आ पहुँचता, यहाँ मुझे अकेले ही समय बिताना होगा और समय तो किसी तरह काटते नहीं कट रहा था। अीरान में मैं पचीस साल रहा, लेकिन दिल अिस तरह कभी चंचल-अधीर नहीं हो अुठा था। लेकिन अब तो अेक अेक दिन, अेक अेक साल जैसा सुदीर्घ प्रतीत हो रहा था।

भविष्य पर मैं विश्वास करता हूँ, अिस बात को मैनेजर अच्छी तरह जानता था। अुसी दिन, अुससे मिलने के लिये कोअी मशहूर ज्योतिषी आया था। अुसे अुसने अूपर, मेरे कमरे में भेज दिया। लेकिन आते ही, वह गधा तो बताने लगा कि अब भविष्य में मेरे भाग्य में संतान-योग नहीं है। मैंने मसूरकर की बनायी जन्मपत्री अुसके सामने पटक दी। अिस वर्ष का भविष्य भी अुन्होंने लिख भेजा था। वह भी दिखाया— 'लग्नयोग निश्चित्! घर में जल्द ही बालबच्चा खेलने लगेगा।'

और कोअी भला आदमी होता तो अब चुपचाप वहाँसे खिसक जाता। लेकिन ये ज्योतिषीजी तो अपना रास्ता नापने के बदले, मसूरकरजी को ही

गालियाँ देने लगे। मैंने अुनकी गर्दन पकड़ी, अुसे कमरे के बाहर कर दिया और मैनेजर को ताकिद की कि अब स्वयं ब्रह्मा का पिता भी आये, तो अुसे अूपर, मेरे पास मत भेजना!

लेकिन मैनेजर भी अैसा गँवार कि मेरा पाँसा मुझ ही पर पलटाने के लिये, अशोक के आने पर अुसे ही अुसने रोक लिया। अब अिस बेवकूफ़ को क्या कहूँ? अिसी ने तो अशोक के नाम अपने हाथ से टेलिग्रैम लिखा था। यही सच है कि सिखाने से कभी अक्ल नहीं आती।

अशोक अूपर मेरे कमरे में आया और 'पिताजी' कहकर अुसने मुझे प्रणाम किया। पिताजी! अशोक के मुँह से अुस शब्द को सुनकर मेरी खुशी का ठिकाना न रहा! सोचा, लपककर अुसे अपने बाहों में भर लूँ, अुसे कसकर अपने सीने से चिपका लूँ – लेकिन अशोक तो अब मेरे सामने अेक नौजवान के रूप में खड़ा था। मेज़ पर रखी तसवीर में और अशोक की सूरत में तनिक भी समानता दिखाअी नहीं दे रही थी।

मैंने अुसे अपने निकट बिठाया और मेज़ पर रखी तसवीर की ओर देखते हुअे कहा, 'अितने साल तक अिस तसवीर ही को मैं रोज़ देखा करता था। मुझे अैसा लगता था कि मेरा अशोक अबतक अेक अबोध शिशु ही है। सपने ही में मैं तुम्हारा प्यार दुलार करता था, तुम्हें गोद में लेकर घंटों बैठता था, तुम्हें अपनी पीठ पर सवार करा मैं स्वयं घोड़ा बनता था। लेकिन यदि मैं अब अैसा करूँ, तो लोग मुझे घोड़े की बजाय गधा कहेंगे और गधा भी अैसा वैसा नहीं...ठेठ अीरानी गधा!'

अपनी ही बात पर मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। अशोक के होंठों पर मुश्किल से मुस्कराहट की अेक क्षीण रेखा प्रस्फुटित हुअी। मैंने दिल में कहा, साहबज़ादे बड़े ही होशियार मालूम पड़ते हैं।

यूँ ही, बात बात में मैंने ब्याह का ज़िक्र छेड़ा। खुल्लमखुल्ला तो कह भी तो नहीं सकता था। मैंने कहा, 'टेलिग्रैम देकर मैंने तुम्हें अिस-लिये बुलाया कि काम ज़रा जल्दी का था; और तुम तो जानते ही हो कि ब्याह-शादी के मामले में अक्सर जल्दी करनी ही पड़ती है।' अुसने सोचा – मैं कहीं पर अुसीके ब्याह की बात तय करना चाहता हूँ। मैंने अुसके सामने मसूरकरजी की बनायी पत्रिका खोल कर रख दी, मेरा

लग्न-योग और संतान-योग दिखाया और ब्याह मेरा हो रहा है यह स्पष्ट रूप से सूचित करने के लिये कहा, ' अेक नहीं, दो नहीं, पूरे पच्चीस साल बिना बीबी-बच्चे के, मैंने अीरान में बिताये हैं— '

मेरा ख्याल था कि मेरे मुँह से अिन शब्दों को सुनकर अुसका दिल पसीजेगा। आख़िर अपना पिता अिस अुम्र में किसलिये ब्याह करने पर मजबूर हो रहा अिसे वह ठीक तरह से जान पायेगा। लेकिन अिसके विपरित, वह तो मुझे ही अुपदेश के पाठ पढ़ाने लगा। बस, हम दोनों में ठन् गयी।

अशोक ने कहा, ' लेकिन पिताजी, अिस अुम्र में ब्याह करना आप को— '

अुसकी बात काटकर मैंने पूछा, ' मेरी अैसी कितनी ज्यादा अुम्र हो गयी है? अिस अुम्र में भी तुम्हारे साथ कुश्ती लड़ने की ताक़द मुझ में है। '

' लेकिन यदि आप ब्याह करना चाहते हैं तो अधेड़ आयुवाली किसी विधवा के साथ पुनर्विवाह क्यों नहीं करते? '

' देखो, अशोक! मेरे ख्याल से, आधुनिक शिक्षा के कारण तुम्हारे विचार बड़े ही सुधारवादी बन चुके हैं। लेकिन इतने साल अीरान में बिताने पर भी, मैं तो वही, लकीर का फकीर ही रहा हूँ। देवी-देवता, धर्म-कर्म, साधु-संत शनि-मंगल आदि सबका मैं अबतक पहले जैसा ही विश्वास करता हूँ। '

' तो क्या, आपकी कन्या-सी लगनेवाली किसी लड़की के साथ, अिस अुम्र में आप ब्याह करेंगे? ब्याह के बाज़ार में क्या आप अेक लड़की खरीदेंगे? '

' ब्याह के बाज़ार में तो हर किसी को अपने आपका सौदा ही करना पड़ता है, बेटा! तुम्हारे पिताने अीरान में पच्चीस साल बिताये, वहाँके शहा के मेहमान की हैसियत से नहीं — मिट्टी के तेल की किसी कंपनी में और दवाअियों की किसी दूकान में अपने जीवन के अितने साल अुसने बिता दिये हैं। और अब ... '

मेरे अिस अुत्तर ने अशोक की जैसे जुबान ही बंद कर दी। बिना कुछ

कहे वह चुपचाप गुमसुम बैठ गया। सख्त लोहा अब बिल्कुल नर्म बन चुका था। तब भी, दो चोटें और लगाने के अिरादे से मैंने कहा 'देखो बेटा, जवान बच्चों के ब्याह में बुजुर्गों का और बुजुर्गों के ब्याह में बच्चों का दखल देना ठीक नहीं। तुम चुपचाप मेरे ब्याह में आओ — जितनी भी तुम खा सको, मिठाअी खा लो और अपने कमरे में बैठकर, आराम से मनोविज्ञान की पुस्तकें पढ़ो।'

मेरा ख्याल था कि अिस पानी से आग ज़रूर बुझ जायेगी लेकिन वह तो पानी नहीं, तेल साबित हुआ — मिट्टी का तेल!

अशोक ने सहसा कड़क कर कहा, 'चाहे मेरे प्राण भी क्यों न चले जायँ, आपके ब्याह में मैं कदापि अुपस्थित न रहूँगा। आपकी खरीदी हुई, नयी माँ की सूरत देखने के लिये मैं आपके मकान में भी कभी क़दम तक न रखूँगा! पिताजी, अपने सुख की नींव औरों के दुख पर जमाने से बढ़कर दुनियाँ में और कोअी महापाप नहीं है।'

यह सब वह सच्चे दिल से कह रहा था। पलभर अुसकी बात में मुझे भी सचाअी प्रतीत हुअी। लेकिन दूसरे ही पल मैंने सोचा — अशोक को दुनियाँ का तज़रबा ही क्या है? पुस्तकों में लिखे सुंदर तत्त्वों को रट कर अुन्हें औरों के सामने कह सुनाने जैसा आसान अिस दुनियाँ में और कुछ नहीं है। ये नवयुवक अक्सर यहींपर धोखा खाते हैं। बड़े तपाक के साथ अशोक ने कह तो दिया कि 'अपने सुख की नींव औरों के दुख पर जमाने से बढ़कर दुनियाँ में और कोअी पाप नहीं है', लेकिन ज़रा पूछो तो अिससे, कि यदि अिसके प्राणों की रक्षा करने के लिये अिसकी माँ मृत्यु का आलिंगन न करती, तो मुझे ज्ञान सिखाने के लिये आज क्या यह अिस नारसिंहाश्रम में आ पाता?

लेकिन अुसका मुँह बंद करने के लिये यह सब पूछने की ज़रूरत ही क्या थी? यह सुशीला की चिट्ठी ही उसके हाथ में मैंने थमा दी। अुसके अिन शब्दों को पढ़कर कि 'मैं खुशी के साथ ब्याह के लिये तैयार हूँ' साहबज़ादे के चेहरे पर हवाअियाँ अुड़ने लगीं। मेरे होंठों तक आया था कि अुसे कह दूँ कि 'बच्चू, आखिर मैं तुम्हारा पिता हूँ। चार-पाँच ही नहीं, ठीक बीस बसंत मैंने तुम से ज़्यादा देखे हैं!'

न जाने कबतक अुस चिठ्ठी की ओर देखते हुअे अशोक पुतले की भाँति खड़ा था । पिता-पुत्र का समझौता हो रहा है, अिस ख्याल से मुझे भी खुशी हुओ । लेकिन बाद में, अुस चिठ्ठी पर लिखे पते की ओर अेक नज़र देखकर अुसे मेरे हाथ में थमाते हुअे साहबज़ादे ने कहा, 'खैर पिताजी ! आपकी और मेरी पहली ही मुलाक़ात को अंतिम मुलाक़ात का रूप प्राप्त होनेपर मुझे अफसोस है...लेकिन...'

अिसके आगे का भाषण सुनकर फ़ायदा ही क्या था ! क्रोध से आग का गोला बनकर, मैंने उसे उसी क्षण मेरी आँखों के सामने से निकल जाने के लिये कहा । ...

दो मिनट के बाद मैंने खिड़की से बाहर झाँक कर देखा...अशोक दूर, दूर, चला जा रहा था ।

● ● ●

६

पु ष्पा

अशोक मुझे छोड़कर दूर दूर चले जा रहे हैं अिस ख्याल से मेरी आँखें छलछला आयीं।

यूँ तो वे कहीं ज़्यादा दूर नहीं – बंबअी ही जा रहे थे। अुनके पिता अचानक अीरान से लौटे। अशोक के नाम अुन्होंने टेलिग्रेम भेजा और अुनसे मिलने के लिये वे तुरंत चल पड़े, अिस में दुख की बात ही क्या थी। लेकिन विधाता ने नारीयों के दिलों का निर्माण ही फूलों से किया है।...

किसी ने लिखा है – शायद गड़करीजी ने ही –, कि 'स्त्री की आँखों में गंगाजमना दिखाअी देते ही पुरुषों की सरस्वती तुरन्त प्रकट होती है।' यह कथन बिलकुल सच है। मेरा अपने रूमाल से चुपके से आँखें पोंछना अशोक ने देखा – और अुसी क्षण, डिब्बे की खिड़की से अपना हाथ अुन्होंने अलग किया और जेब से अपना रूमाल निकाल कर कहा, 'क्या, मैं भी कुछ सहायता कर सकता हूँ?' मुझे अैसा प्रतीत हुआ, जैसे घन-घोर वर्षा के बीच सहसा स्निग्ध चाँदनी खिल गयी हो! गर्दन को एक नाज़ुक-सा झटका देकर, संकेत ही के द्वारा मैंने कहा, 'आप को तो बस हमेशा दिल्लगी ही सूझती है।'

और अुन्हें सच दिल्लगी सूझी भी थी। अुन्होंने कहा, 'गंगाजमना में बाढ़ आ जानेपर, गाँव के गाँव बह जाते हैं।—'

'हाँ! सुना है मैंने! लेकिन यकीन रखिये, अिस गंगाजमना में आप कदापि डूब नहीं सकते!'

तुरंत अुन्होंने बातचीत का रुख बदलते हुअे कहा, 'पुष्पा, – मेघदूत तो तुमने पढ़ा ही है! अुस जमाने में टेलिग्रैम नहीं थे, टेलिफ़ोन नहीं थे, यही नहीं, चिठ्ठी भेजने के लिये डाकखाने तक का प्रबंध नहीं था। और अिसी से तो मज़बूर होकर बेचारे अुस यक्ष को, मेघ के द्वारा अपनी विरहिणी स्त्री के पास खुशहाली का संदेसा भेजना पड़ा। अुस यक्ष की स्त्री की अपेक्षा तो तुम्हारा दुख ज़्यादा नहीं है न?'

मेरा दुख! शायद पुरुष स्त्रियों के दुखों का अनुमान ही नहीं कर पाते। आज हम दोनों ने किसी बगीचे में सैर के लिये जाने का निश्चय किया था। वहाँ नदी में तैरते हुअे, अशोक के मुँह पर मैं जी भरकर पानी के छींटें अुड़ानेवाली थी। बोटिंग करते हुअे, 'अेक था राजा' वाला गीत सुनाकर, अुसे सुनते हुअे वे किस तरह प्रसन्न होते हैं अिसे मैं देखना चाहती थी, और न जाने मैंने क्या क्या सोच रखा था! लेकिन मेरे तमाम अरमान अधूरे ही रह गये। अुनके पिता का अचानक टेलिग्रैम आया! ये बुजुर्ग लोग भी कैसे अजीब होते हैं! बच्चों की खुशी अुनसे देखी ही नहीं जाती! यदि अेक रोज़ के बाद वे टेलिग्रैम भेजते तो हमें सैर के प्रोग्रैम से वंचित न रहना पड़ता! और मैं पूछती हूँ कि यदि ये साहब अपने पुत्र को अितना चाहते थे, तो विगत पचीस साल में, अुससे मुलाक़ात के लिये यह महाशय अेक बार भी यहाँ क्यों नहीं पधारे!

गाड़ी की घंटी बजी। मैंने अशोक से कहा, 'देखिये, देरी मत लगाअिये! जल्द...बिलकुल जल्द ही आअिये...'

अुन्होंने मुस्कराकर कहा, 'देखें, अब पिताजी का क्या काम है – सब कुछ अुसी पर निर्भर है'।

अुनकी बात काटकर मैंने कहा, 'वे आप को अीरान ले जाना चाहते हैं...'

'तो यहाँ अिनकार किसे है? खुशी से चले जायँगे।'

'तब आप के पिताजी से तीन टिकटों का प्रबंध करने के लिये कहिये।'

अशोक ठठाकर हँस पड़े। मैं भी हँस पड़ी। गार्ड ने सीटी बजायी, हरी झंडी भी दिखाअी, गाड़ी चल दी...और अुसी क्षण मैंने चुपके से अशोक के हाथ से अुनका रूमाल खींच लिया। अुनके अस्पष्ट शब्द मुझे सुनाअी दिये – 'क्या...चोर चोर कर – नारा लगाकर गाड़ा रोकने के लिये जंजीर...'

गॉर्की का 'माँ' नामक अुपन्यास दुबारा पढ़ने के लिये अशोक ने अेकबार मुझ से कहा था। अुस वक्त मैंने भी दिल्लगी ही के स्वर में कहा था, 'क्या, 'पत्नी' नामक कोअी अुपन्यास आपके पास नहीं है? यदि हो, तो माँ दुबारा पढ़ने के पहले मैं अुसे ही पढ़ना चाहती हूँ...'

स्टेशन से घर लौटते ही मेरे अिर्दगिर्द जैसे घनघोर अुदासीनता छा गयी। अुस पार के कमरे में मौसी और चिंतोपंत में हँसी-दिल्लगी हो रही थी। अुसे सुनकर मुझे घृणा आने लगी। सोचा, काश, अिस वक्त मैं अपने कानों में रूई ठूँस लेती।

गॉर्की की 'माँ' लेकर मैं चुपचाप आरामकुर्सी पर लेटी। पहला पन्ना खोला, पढ़ने की कोशिश की – लेकिन अुस पन्ने पर छपे शब्दों का अर्थ ही मेरी समझ में नहीं आ रहा था! अुस स्थल पर मुझे शब्द दिखाअी ही नहीं दे रहे थे! मेरी आँखों के सामने तो अशोक की मूर्ति खड़ी थी। अिस वक्त गाड़ी कौन से स्टेशन पर होगी? अशोक को मेरी याद आती होगी या नहीं? क्या अुन्होंने अपना संदूक खोला होगा! यदि खोला होगा तो बिल्कुल अूपर की ओर ही रखा, टॉफी का पैकेट देखकर अुन्होंने क्या सोचा होगा —

कितनी मधुर कल्पनाओं पर मेरा मन तरंगित हो रहा था! तभी हाथ में रखी पुस्तक की ओर मेरा ध्यान गया। अिस अुपन्यास की अैसी कौनसी विशेषता है जिसने अशोक को अिस कदर प्रभावित किया है? क्या, अिसलिये कि अिस अुपन्यास की माँ अपने बच्चों को बेहद चाहती है? लेकिन अैसी कौन माँ होगी जो अपनी संतान को चाहती न हो? मेरी माँ के लिये काला अक्षर भैंस बराबर है। जवाहरलालजी का नाम

तक अुसने सुना नहीं है । क्रांति शब्द का अर्थ तक वह नहीं जानती । लेकिन अिस के बावजूद भी, मुझपर अुसका प्यार अिस अुपन्यास की माँ के प्यार से अिंच मात्र भी कम नहीं है । तब अिस अुपन्यास में आखिर अैसी कौन-सी विशेषता है, जिसने अशोक को अिस तरह प्रभावित कर दिया है ।

अशोक के रूमाल से पसीना पोंछते हुअे मेरे शरीर पर मधुर रोमांच हो आये । हमारे घर में तोता नहीं है । वरना, मेघदूत के यक्ष की पत्नी के समान मैं भी अुससे जरूर पूछती, ' आत्माराम ! क्या, तुम्हें भी कभी अशोक की याद सताती है ? ' साल दो साल पहले संस्कृत कवियों के लिखे प्रेम के वर्णन सुनकर मुझे हँसी आती थी । मैं सोचती, काव्य रचनेवाले और बुराअी करनेवाले – दोनों अेक-से होते हैं । बिना अत्युक्ति के अिनके दिल को तसल्ली ही नहीं होती । लेकिन अब लगता है कि काव्य तो कलअी अुतरा शीशा है जिस में मनुष्य का वास्तविक मन कभी पूर्ण अंश से प्रतिमान होता ही नहीं !

आज की सैर तो खैर, रह ही गयी । अब अशोक वापिस भी आयेंगे, तो अुन्हें आश्रम के काम के लिये दुबारा दौरे पर जाना होगा । फिर तो ठीक कॉलेज शुरू होने के समय ही वे लौटेंगे । परसों तो कह रहे थे कि आश्रम के लिये कुछ नये कमरे बनवाने होंगे, अतः अब के खूब भीक माँगनी पड़ेगी । और, अेक बार कॉलेज शुरू हो जानेपर तो कुछ न पूछिये । तब तो अशोक और घड़ी में कोअी अंतर ही नहीं रह जायगा । सबेरे स्वाध्याय, दोपहर में कॉलेज, शाम को आश्रम – यदि अुनसे हमेशा मिलना हो तो पुष्पा को आश्रम ही में जाकर रहना होगा ।

सोचा था, कम-से-कम छुट्टी के दस-पंद्रह दिन में तो, अशोक के सहवास का सुख पा सकूँगी । लेकिन कॉलेज की छुट्टी और अशोक के पिताजी के आने का अेक ही मुहूर्त निकला । और अब तो अुनका पचीस साल का प्रेम-प्रवाह जो अवरुद्ध है । वे क्या अपने सुपुत्र को अितनी जल्द थोड़े ही छोड़ेंगे ।

और अशोक से अिसकी शिकायत करना भी बेकार है । मैंने अुन से अेक बार कहा था, कि सबेरे अुठते ही मुझे तो हरअेक दिन सोने का सा

लगता है। तब अुन्होंने तुरंत ही कह डाला, 'तब तो सूर्य की किरणें शरीर पर पड़ने के अनंतर ही तुम अुठती होगी।' तब मैंने कहा, 'जी नहीं। निद्रा के बीच मनुष्य किसी अनोखे ही जगत् में संचरण करता है... आँख खुल जानेपर वह अिस जगत् में आ पहुँचता है, और अिस प्रकार आँख खुलते ही, मुझे पहले पहल याद आती है सिर्फ आपकी...और अुस समय अैसा प्रतीत होता है कि जगत् में सिर्फ दो ही व्यक्ति हैं — अशोक और पुष्पा।

अुनके चेहरे से पता चला कि मेरी बात सुनकर वे खुश हुअे। लेकिन साथ ही साथ अुन्होंने कहा, 'पुष्पा, मनुष्य के दो जगत् होते हैं। अेक में वह स्वयं सम्राट् है — लेकिन दूसरे में अुसी सम्राट को किसी का सेवक बनना पड़ता है।'

वे जब अिस तरह कुछ कहने लगते हैं, तब मैं सकपका जाती हूँ। समुद्र देखने में कितना सुंदर दिखाअी देता है! लेकिन अुसे देखते ही, अुस में कूदकर, अुस पार चले जाने का साहस हम में नहीं होता है। हमें डर-सा लगता है। मेरा भी वही हाल था। अुनके शब्दों की ओट में छिपे वास्तविक मन को तलाश करते हुअे, मैं किसी अजीब-से डर का अनुभव करने लगती हूँ।

अेक दिन की बात है। विगत तीन-चार दिन में वे मुझसे मिल नहीं पाये थे। हमारी मुलाक़ात होनेपर मैंने कुछ झल्लाहट के ढंग में कहा, 'अिसमें तनिक भी संदेह नहीं कि प्रेम अंधा होता है!'

अिसपर अुन्होंने पूछा, 'एँ? सच कहती हो?' यह कहते हुअे अशोक की मुद्रा किसी अबोध शिशु के जैसी प्रतीत हो रही थी।

मैंने कहा, 'प्रेम अंधा होता है तभी तो वह कभी कभी अपने प्रियव्यक्ति तक के घर की राह भटक जाता है।'

वे पलभर मुस्करा दिये। लेकिन बाद में मुझे वह व्याख्यान सुनाया कि वैसा व्याख्यान कभी क्लास में भी अुन्होंने न सुनाया होगा। कहने लगे 'कअियों की प्रीति आत्मप्रीति ही होती है — अपने प्रिय व्यक्ति के सहवास की अिच्छा तो स्वत्वाधिकार ही का अेक दूसरा रूप है...' अिस तरह, न जाने क्या क्या अुन्होंने कह डाला। आजकल मनोविज्ञान-शास्त्र तो, कल्पना में भी न आ

सकनेवाली अुलझनें सुलझाने की चेष्टा कर रहा है। अिसपर अशोक ठहरे अिस शास्त्र के प्रोफ़ेसर! तब वे जो कुछ कहें, थोड़ा ही है।

बंबअी पहुँचते ही चिट्ठी भेजने का अुन्होंने वादा किया था। अतः मैं तीसरे दिन सबेरे कितनी जल्दी अुठ गयी थी। किंतु डाक क्या केवल मेरे लिये, जल्दी थोड़े ही आनेवाली थी। लेकिन तब भी सोचा, कि डाकिया आने में देरी भी लगा सकता है। दिल में यह ख्याल आते ही मैं ही अुठकर डाक-घर को चल दी। पर वहाँ पहुँचने पर जब पता चला कि डाकिया अभी अभी पाँच मिनट पहले ही डिलिवरी के लिये निकल गया है तब मुझे अुसपर बेहद गुस्सा आया।

चुपचाप घर आकर बैठे बैठे पोस्टमन का अिन्तज़ार करने लगी। अुस पार के बँगले के निकट अुसकी साअिकिल दिखाअी दी। मेरा कलेजा धड़कने लगा। अशोक ने चिट्ठी में क्या लिखा होगा। अपनी चिट्ठी में अुन्होंने कहीं अैसा तो नहीं लिखा होगा कि, 'पुष्पा, गाड़ी चल देते ही, तुमने जिस तरह चुपके से मेरे हाथ से रूमाल खींच लिया, ठीक अुसी तरह, काश, मैं तुम्हें ही, चुपके से अुठाकर अपने साथ रेलगाड़ी में बिठा लेता!...'

लेकिन डाकिया तो हमारे बँगले को छोड़कर आगे ही बढ गया। अुसने हमारे बंगले की ओर अेक नज़र देखा तक नहीं। मैंने सोचा, यह बड़ा जल्दबाज़ मालूम होता है। अब अिसे मेरी चिठ्ठी देने के लिये और अेक बार अिस मुहल्ले का चक्कर काटना पड़ेगा।

लेकिन जैसा कि मैंने सोचा था, अुस डाकिये को क़तअी चक्कर काटना न पड़ा। अशोक पर मैं बेहद झुँझला अुठी। अुन्हें सबक सिखाने के लिये, फोन द्वारा बात करने के निश्चय से मैं घर से निकली। लेकिन तभी, सोचा कि लंबे अर्से के बाद अपने पिता से मुलाक़ात करने गये हैं और अिस खुशी में अपनी पुष्पा के नाम दो पंक्ति की अेक चिठ्ठी लिखने का अुन्हें स्मरण न रहा हो। अब कहीं अैसा न हो, कि फोन करने पर नारसिंहाश्रम के मैनेजर से यह जवाब मिले कि बाप-बेटे दोनों अेक लड़की देखने के लिये कहीं बाहर गये हैं। तो...

आधे रास्ते से ही मैं घर लौट आयी। लेकिन घर पर पहुँचने के

पहले, सहसा ख़याल आया कि हो सकता है कि मौसी के हाथ में पडने के डर से, अशोक ने शायद चिट्ठी मेरे घर के पते पर न भेजते हुअे अुनके अपने पते पर ही भेजी होगी। हाँ! मेरा अनुमान ज़रूर सच साबित होगा। लेकिन अुस पत्र को पाते ही अुसे मेरे पते पर पहुँचाने की अक्ल चंदू में कहाँ है। अुसमें अगर अितनी सूझबूझ होती तो बेचारा मामूली नौकर क्यों बनता!

लगभग दौड़ती-सी मैं अशोक के घर पहुँची। देखा तो दरवाज़ा खुला ही था। जो बैग अपने साथ वे ले गये थे, अुसे सामने ही देखकर मैं हैरान रह गयी। अितने में चंदू भी आ पहुँचा। मैंने अुससे यूँ ही पूछा, 'क्यों चंदू, क्या अशोकबाबू की कोअी चिट्ठी आयी है?'

'साहब ही स्वयं आ गये हैं, देवीजी!'

मैं जानती थी कि अशोक ने अपनी बैग कुछ पोस्ट द्वारा तो नहीं भेजी होगी! लेकिन तब भी, चंदू के अुस जवाब को सुनकर मैं झुंझला अुठी।

'कहाँ गये हैं तुम्हारे साहब?'

अुसने पलभर मेरी ओर विचित्र भाव से देखा; क्योंकि अशोक को 'साहब' कहने का यह मेरा पहला ही मौक़ा था।

अुसने कहा, 'वे तो आश्रम गये हैं।'

मैं अशोक के घर से बाहर निकली और अुसी क्षण मुझे अैसा महसूस होने लगा कि जैसे मेरा दम घुट रहा हो। जी चाहने लगा कि कहीं अेन्कात में बैठेकर खूब जी भरकर रो लूँ! तुरंत सोचा, मैं क्यों अिस तरह आँसू बहाअूँ? क्या अशोक पर मेरा कोअी हक़ ही नहीं है! मैं अभी आश्रम में जाअूँगी और अुन्हें अपने साथ लिवा लाअूँगी।

क्रोध के आवेग में मनुष्य कोअी भी काम शायद झटपट कर बैठता है। कितनी शीघ्रता के साथ मैं आश्रम में पहुँच गयी! वहाँ पता चला कि अशोक अपने कमरे में बैठे हैं। कमरे के किवाड़ भिड़े हुअे थे। मैंने सोचा, चिंतोपंत और अशोक भीतर बैठकर आश्रम के हिसाब की जाँच कर रहे होंगे। मैंने दरवाज़ा खोला। भीतर दो ही आदमी थे। अुनमें से अेक थे अशोक और दूसरी थी – एक सुंदर लड़की!

अँधेरे में किसी शीतल, मुलायम वस्तु को छू जानेपर साँप की आशंका

से मनुष्य के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मेरा भी ठीक वही हाल हुआ। मैं अुल्टे पैरों लौट ही रही थी कि मेरी ओर देखकर अशोक ने कहा, 'पुष्पा! तुम? आओ न भीतर!'

मैं भीतर गयी! अुस लड़की की ओर अिशारा करते हुअे अशोक ने कहा, 'यह है तारा। मैंने अुस रोज़ अिसके बारे में कहा नहीं था तुमसे? और तारा, अिसे जानती हो तुम —?'

यह सुनकर मुझे गुदगुदी-सी हुअी; लेकिन पलभर ही! दूसरे ही क्षण वह गुदगुदी चिकोटी में बदल गयी। क्योंकि अशोक ने अिसके बाद कहा, 'यह है पुष्पा! मेरी प्रिय छात्रा।'

काश! अशोक अुन अंतिम शब्दों का उच्चारण ही न करते।

तारा ने मुझे नमस्ते किया। अुसे प्रति नमस्ते करते हुअे मैंने अशोक से कहा, 'मैं आपको अपने साथ ले जाने के लिये आयी हूँ।'

'कहाँ?'

'कहीं घूमने टहलने के लिये।'

'अितनी कड़ी धूप में?'

'मेरी तबियत!'

'मालूम होता है दो दिनों में तुम्हारी तबियत ने बहुत ज़ोर पकड़ा है।'

'गुरु की विद्या क्या शिष्या को नहीं सीखनी चाहिये?'

'पर बाबा, मेरी तबियत कहाँ अैसी अुलझी है?'

'नहीं कैसे! आते ही आप सीधे आश्रम जो चले आये —'

अशोक ने मेज़ पर के तमाम कागज़ तरतीब से रखे, खूँटी से अुतारकर कोट पहना, और तारा से कहा, 'अब तुम जा सकती हो।'

तारा की ओर विजयी मुद्रा से देखते हुअे, अशोक को अपने साथ लेकर मैं आश्रम से बाहर निकली। लेकिन मेरा वह विजयोल्लास अधिक देर तक न टिक सका। मैं जहाँ जहाँ जाती, अशोक मेरे पीछे पीछे आ रहे थे। लेकिन अुनके मुँह पर तो जैसे किसी ने ताला लगा दिया था। कुछ छेड़छाड़ करने के अिरादे से मैंने पूछा, 'बंबअी से आते हुअे क्या क्या ख़रीद लाये?'

'कुछ भी तो नहीं।'

'नहीं कैसे! अेक नया ताला जो दिखाअी दे रहा है।'

मुस्कराकर अुन्होंने कहा, 'ओह! लेकिन अुस ताले की चाभी कहीं खो गयी है।'

'चाभी खो जानेपर ताला तोड़ना पड़ता है। शायद अिसे आप जानते ही होंगे।'

'तो अिसका मतलब यह हुआ कि आदमी अगर न बोले तो अुसका मुँह तोड़ देना चाहिये। क्यों? भअी, तुम्हारी तरकीब तो बहुत बढ़िया है।'

तब भी, अुनकी मुद्रा पर गंभीरता जैसी की वैसी ही बनी रही। मुझ से चुप न रहा गया।

मैंने कहा, 'शायद बंबअी में कोअी विशेष घटना घटी है।'

'हाँ।'

'मैं बताअूँ क्या बात है? ... आपके पिताजीने आपका ब्याह तय किया है ... और आपको वह पसंद नहीं।'

'तुम्हारा ख़याल बिलकुल ठीक ही है।'

बाज़ी मुझ ही पर पलट रही थी। कँपित स्वर में मैंने पूछा, 'अुस खुशनसीब लड़की का नाम क्या है?'

'खुशनसीब या बदनसीब?'

मैं अुनकी ओर देखती ही रही!

अशोक ने कहा, 'मेरे पिताजी स्वयं ही अुस लड़की से ब्याह करना चाहते हैं।'

मेरे सीने से जैसे बड़ा भारी बोझ अुतर गया। टहलते हुअे हम अमराअी तक आ पहुँचे। मैं किसी तरह अशोक को हँसाना चाहती थी। मैं झट से अेक आम के पेड़ पर चढ़ गयी। नीचे से अशोक ने कहा, 'सम्हालो पुष्पा, कहीं अूपर से गिर पड़ी तो मुसीबत होगी...'

दो डालियों के बीच से, गिलहरी के समान मुड़कर देखते हुअे मैंने कहा, 'डरिये नहीं! नीचे गिरने पर भी मुझे कोअी चोट नहीं पहुँचेगी—'

'वह क्यों?'

'क्योंकि नीचे धरती पर तो मैं गिरूँगी ही नहीं! मैं तो किसी की—'

'आज तो तुम बिलकुल नादान बच्ची ही बनी हो।'

'यदि कोअी व्यर्थ ही बूढ़े बाबा बन जायँ तो और कोअी बच्चा क्यों न बने?'

अमियाँ तोड़ने के लिये मैं और अूपर चढ़ी। मेरा ख्याल था कि अशोक भी मेरे पीछे पीछे अूपर चढ़ेंगे। लेकिन वे तो मिट्टी के पुतले जैसे, नीचे चुपचाप खड़े थे। अमियाँ तोड़कर मैं नीचे अुतरी और चाकू निकालने के लिये अुनकी जेब में हाथ डाला तो अेक पुर्ज़ा हाथ में आया। चाकू के साथ अुसे भी मैंने बाहर निकालकर देखा तो किसी की चिट्ठी थी। कौतुहल वश चिट्ठी पढ़ने लगी...और अुसे पढ़ते ही, बिना अमियाँ खाये ही मेरा जी अैसा खट्टा हो गया कि कुछ न पूछिये — वह चिट्ठी तारा की थी। लिखा था — 'अेक रोज़ भी आपके दर्शन से वंचित रही, कि मेरा धीरज छूटने लगता है।...'

तो क्या, अभी अभी, जब मैं आश्रम में गयी तब भी, शायद दोनों में अिसी तरह प्रेमप्रलाप ही चल रहे थे?

संदेह! संदेह के कारण निर्माण होनेवाला क्रोध भी बड़ा अजीब होता है। वह चिट्ठी मैंने अशोक के सामने फेंक दी और अुनकी ओर पीठ फेरकर, अुसी क्षण वहाँ से चल दी —

● ● ●

७

अ शो क

पुष्पा नाराज होकर चली गयी अिसमें अचरज की बात ही क्या है ! पर मुझे तो सच भी अपने खीसे में किसी अैसे पत्र के होने का पता तक न था। मैं यह बात अुससे कहता भी, तो वह सपनेमें भी सच न मानती। और मैं अुस पत्र को पढ़ूँ, तब तक तो वह तेज़ी से चली भी गयी।

संशय जितना जल्दी जड़ पकड़नेवाला विषवृक्ष कोअी और नहीं है। भला बंबअी से कितनी विक्षुब्ध मनःस्थिति में मैं वापिस आया था। और मन की विषम वेदना को भुला देने के लिये ही, किसी काम में जुट जाने के अिरादे से आते ही मैं तुरंत आश्रम चला गया। वहाँ तारा की फरियाद चिंतोपंत के खिलाफ होने से अुसे सुनने के लिये किवाड़ बंद करना निहायत जरूरी था। पुष्पा को अिनमें से अेक भी बात का सही पता नहीं। और हो भी, तो पुष्पा याने निरी फुलपाँखुरी। अुसे भला जगत् के काँटों की कल्पना ही कहाँ है।

मनुष्य दूसरे के बारे में कितना शीघ्र साशंक होता है !

परंतु तारा को भी अितना विचित्र पत्र आखिर मेरे खीसे में क्यों रखना चाहिये ?

मैं तुरंत ही लौटकर आश्रम गया, और तारा को अपने कमरे में बुलाकर वह पत्र अुसके सामने रखा तो वह पलभर तो स्तब्ध रही, किंतु जैसा कि अिस बारे में मेरा खयाल था, वैसे वह ज़रा भी रोअी-धोअी नहीं। न तो अुसने कोअी अैसी सफ़ाअी ही दी कि 'यह पत्र मैंने नहीं लिखा है' अुसके अिस रुख़ पर अेक बार तो मैं भी स्तब्ध रह गया। परंतु शीघ्र ही सँभलकर मैंने अुससे पूछा, 'आश्रम के नियम जानती है न तू?'

'हाँ!'

'फिर अैसा पत्र क्यों लिखा?'

तब मुझे घूरकर बोली, 'आप तो मनोविज्ञान के प्रोफेसर हैं न?'

'तो फिर?'

'यही कि विधाताने आपके आश्रम के नियम पढ़कर मेरा मन कुछ नहीं गढ़ा।' मैं स्तब्ध होकर अुसकी ओर देखता ही रह गया तो वह बोली, 'बतलाअिये, प्रेम करना मनुष्य के मन का धर्म है या गुनाह?'

अुसे बनानेवाला विधाता भी अगर अुस समय वहाँ होता तो शायद वह भी अिस प्रश्न का सही अुत्तर न दे पाता। अतः मैं अब भी स्तब्ध ही रहा।

तारा के होंठ थरथर काँप रहे थे, आँखें पागलों की सी लगती थीं। अुसके अंतस् में संचित दुख सहसा फूट पड़ा। शिखर से खिसलनेवाले पानी के प्रवाह की तरह अुसकी ज़बान से शब्द निकल रहे थे।

'अगर, आपने लड़की का जन्म लिया होता, अगर आपके घरवालोंने आपको किसी बूढ़े को बेच दिया होता और अुस बूढ़ेने अपनी वंशवेल बढ़ाने के लिये चाहे जिस जानवरको अुसके पास भेजा होता तो —'

अुसे शांत करने के लिये मैंने कहा, 'तारा'—

'मुझे रोकिये मत अशोक! मैंने आजतक अपनी कष्टकथा किसी को कही भी नहीं, और आज से आगे शायद किसी को कहूँ भी नहीं – सिर्फ़ आपको आज सुनाना चाहती हूँ। जब अुस बूढ़े की मैंने कोअी बात न मानी तो अुसने मुझे बदचलन बताकर घर से निकाल बाहर किया। मैं मिडिल तक पढ़ी थी, अतः मैंने मास्टरनी बनकर पेट भरनेकी सोची, पर अुसमें कहीं मेरी ब्राह्मणजाति बाधक बनी तो कहीं चालचलन। कोअी

प्रमाणपत्र न होना आड़े आया। प्रमाणपत्र पर मनुष्य की चरित्र-परीक्षा का ज़माना है, आजकल। अंत में अेक राज्य में मुझे नौकरी मिली भी तो जिस अिन्स्पेक्टर ने वह नौकरी दिलाअी थी अुसकी आँखों में मुझे कामकूट नज़र आया। परंतु मुझे भूखों नहीं मरना था।

किंतु अुसकी कारगुज़ारियों का शिकार न बनने पर मैं तुरंत ही अेक बुरी मास्टरनी ठहरा दी गयी, मेरी नौकरी छूट गयी। कुछ दिन भीख माँगकर भी गुज़ारे, परंतु किसी जवान भिखारिन का शील भी आज के जगत में सुरक्षित नहीं। अंत में हैरान होकर मैंने आत्महत्या का निश्चय किया, किंतु अिस जगत् में कुछ जीने लायक भी है यह भी विधाता को मुझे दिखाना था, अिस बीच मुझे आपके आश्रम का पता चला, और मैं यहाँ आ गयी तब तुम्हें प्यार करने लगी।'

'किंतु मैंने क्या अेक शब्द भी कभी तुझे —'

'तुम तो जिस प्रकार की ममता सभी लड़कियों पर रखते हो मात्र वैसी ही मुझपर भी रखते रहे। पर मुझे जो जीवन में पूजने के लिये अेक देवता की आवश्यकता थी, वह मिल गया।'

तारा के विवरण में, अुसने अपना हृदय खोलकर जो प्रदर्शित किया, तो मूर्तिमंत सत्य नज़र आया।

तब मैंने शांति के साथ अुससे पूछा, 'तो यह पत्र तूने मेरे ज़ेब में क्यों डाला?'

'मैंने नहीं डाला।'

'तो फिर किसने डाला?'

'शायद यह अुस चिंतोपंत की चातुरी हो। क्योंकि वह आश्रम की लड़कियों को कैदी ही समझता है। अुनपर वह सदैव सतत सतर्क पहरा रखता है, फिर कैदियों में भी तो पक्के गुनहगार कुछ थोड़े ही होते हैं, सभी नहीं, है न?'

अिसपर तारा हँसी। किंतु इस समय वह हँसने के बजाय रोअी होती तो शायद मेरे मन की अुलझन कुछ कम हो जाती। मात्र पाँच ही मिनट वह बोली, पर अिन पाँच मिनटों में तो अुसने नारी पर पीढ़ियों से होनेवाले ज़ुल्मों पर कितना बेधक प्रकाश डाला। तब आश्रम में आनेवाली औरत के

मन में प्रेम पैदा होना गुनाह है क्या ? कितना कठिन प्रश्न है यह ? अनाथाश्रम चलाना कोअी लूली लँगड़ी गौअें पालने का पांजरापोल नहीं है। हम आश्रम चलानेवाले, आश्रम की मदद करनेवाले और समाज का सुधार चाहनेवाले सभी मानते हैं, कि दया के समान कोअी दूसरा धर्म नहीं किंतु दया शायद जानवरों के बारे में भले ही धर्म हो, आदमियों की बाबत तो केवल अेक ही धर्म हो सकता है और वह है आज़ादी !

तो तारा अेक बूढ़े की पत्नी थी। अुसका वह कटु अनुभव और अुसके तीव्र शब्दों के घन की चोट माथे में लगने लगी। अतः मैंने निश्चय किया कि चाहे कुछ भी हो पिताजी का वृद्ध-विवाह हरगिज़ न होने दिया जाय। अुस सुशीला का पता तो अनायास ही मेरे हाथ लग गया था। यदि मैं अुसे अपना असली परिचय दूँ तब तो वह समझेगी, कि यह हज़रत चाहते हैं बाप की वरासत अकेले अिन्हें ही मिले, अिसीलिये सारी चेष्टा है। किंतु अुसे अपना परिचय बिना बताये भी तो अुसका मन फेर देना संभव है।

रात को दस बजे पता लगाता मैं अुसके घर पहुँचा। किंतु आज का दिन कुछ करामती था, पुष्पा बिना पूछे ही छोडकर चल दी, ताराने मेरे मस्तिष्क में विचारों का तूफ़ान खड़ा कर दिया और अब यह तीसरी औरत थी, जिसने सोचा होगा कि अितनी रात गये घर में घुसनेवाला यह आदमी ज़रूर कोअी बदमाश है।

अेक ओर अेक छोटी बच्ची सो रही थी, अुसके सिवा अुस घर में और कोअी न था। मैंने सोचा अकेले में अिसे भलीभाँति समझा सकूँगा, अतः मैंने अुससे कहा कि, 'सुशीलादेवी, डरिये मत, मैं आपका अेक हितैषी ही हूँ'। किंतु अुसने मुझे अुलट के अुत्तर दिया कि 'अपना अच्छा बुरा समझने की शक्ति मुझमें है, और मेरा भाअी बाहर गया है, यह सोचकर अितनी रात गये घर में घुसनेवाले हितैषी की मदद मुझे नहीं चाहिये।'

मैं अगर कुछ अधिक बोलता तो यार-पड़ौसियों को शायद वह हेला भी दे डालती। अतः मैं तुरंत ही अुलटे पैरों लौट पड़ा। अिसलिये मेरे बारे में अुसकी राय कुछ बदलीसी भी नज़र आयी।

अतः अुसने आगे आकर पूछा कि – 'क्या काम है आपको मुझसे ?'

'दासोपंतजी से आपकी शादी तय हुअी है न ?'

'और आपकी शादी किससे तय हुअी है ? यह आप बतायेंगे क्या ?'

'ग़लत न समझे, परंतु दासोपंतजी और आपकी आयु में बहुत अंतर है।'

'यह मुझे भलीभाँति मालूम है।'

'और अुनका अेक लडका भी है, जो अुम्र में आपसे भी बड़ा है।'

'यह भी मुझे मालूम है।'

तब मैंने सोचा, अपनी निंदा करने से कुछ काम निकले, अतः मैंने कहा कि 'वह लडका बहुत बदमाश है।'

'हाँ, यह मैंने नहीं सुना था।'

'अजी, बदमाश भी कैसा ? बहुत ही बदमाश है वह ?'

'याने क्या, अुसने किसी का कत्ल-वत्ल कर डाला है ?'

'नहीं। सो तो नहीं। किंतु कुल मिलाकर वह आदमी अच्छा नहीं।'

'बिचारा बहुत भला होगा तब तो ?—'

'सो कैसे ?'

'अिसी से कि आप अुसकी अितनी निंदा कर रहे हैं, लेकिन लेनादेना क्या है आपको अिस अुठापटक में ? सुनिये, मैं जो शादी करूँगी तो अुस बूढे से ही करूँगी, वरना आजीवन कुँवारी रहूँगी।'

अेक अंतिम प्रयत्न और करते हुअे मैंने कहा, 'किंतु बलि बननेवाली स्त्री को बचाना क्या गुनाह है ?'

अिसपर अुसने सरोब अूँचे स्वर में कहा, 'किसने कहा आपसे कि मैं बलि बन रही हूँ। जानते हैं आप, यह शादी तय होने से मुझे कितनी खुशी है ?'

अब अेक शब्द भी आगे न कहकर मैं चल पड़ा। किंतु ये सोचना कठिन था कि यह औरत ग़रीबी के कारण अपने आपको बेच रही है या अपने मनमाने चोचले पूरे करने की हविस से मालदार बूढे से विवाह करने को आमादा है।

बड़ी आशा से घर आया, सोचा कि शायद पुष्पाने फ़ोन-वीन किया होगा ? चंदू से दरवाजे में घुसते ही पूछा तो अुसने भी हाँ कहा, तो तुरंत ही मन में आया कि इतनी रात गये भी क्यों न पुष्पा से फोन पर बातें की जाय ?'

परंतु आने वाला फोन पुष्पा का न था, शायद किसी का गलत नंबर लग गया था।

दो-तीन दिन में आश्रम के लिये दौरे पर जाना था, परंतु आज अेक दिन में ही मन अितना अस्वस्थ हो गया था कि अुसे स्वस्थ बनाने के लिये किसी काम में जुट जाना बहुत जरूरी था। अतः दूसरे दिन सवेरे ही मैं निकला, पुष्पा से भी मिलना ही था। पर सोचा, दौरे से वापिस आने तक गर्मियाँ समाप्त हो जायँगी! अतः वातावरण स्वयं ही शीतल हो जायगा!

लगभग दो महीने तक मैं घूमता रहा। अिस बीच कितने ही गाँव देखे, अनेक लोगों से पहचान हुअी। सैंकड़ों व्यक्तियोंने मेरे व्याख्यान सुने, आश्रम को चदा भी काफी मिला। आश्रम के विवरण में अिस दृष्टि से अशोक का दौरा अत्यंत सफल समझा जायगा। परंतु मेरे मन में जो अेक बात चुभती थी, अुस चुभन के मूल पर मैंने विचार करके देखा।

पहला शूल था — मानहानि। मनुष्य शायद स्वार्थ छोड़ दे पर स्वाभिमान नहीं छोड़ सकता। गरीबों को चूसकर गब्बर बनने वाले मालदार अथवा किसी पहुँच के कारण बड़े वेतन वाली नौकरी पाने वाले किसी अधिकारी के दरवाजे पर घंटों बैठना कितनी शर्म की बात है! कारण कि अुनके पास पैसा है, समाजसेवक के पास वह नहीं। पर अिसका परिणाम कितना विपरीत होता है। निःस्वार्थी मनुष्य को भी संस्था के लिये क्यों न हो हाँ जी हाँ करनी पडती है। समाजकंटकों के सामने भी अुन्हें सर झुकाना पडता है। सेवक की विद्वत्ता, सिद्धान्त और त्याग का आज के सांसारिक बाजार में कोअी कीमत नहीं।

अितना करने पर भी जिस संस्था के लिये वह भिखारी की भाँति दाता के पीछे पड़ता है, गाँवोगाँव फेरीवाले की तरह फिरता है, मालदारों के दरवाजे पर धरना देकर अड़ जाता है, वह संस्था भी कोअी क्रांतिकारी कार्य करती है क्या? अब आश्रमने अगर बीस-पचीस अनाथ औरतों को सँभाल भी लिया तो क्या अुससे समाज की सहस्रों अभागिनियों के अश्रु कहीं थमते हैं? वे तो बहते ही रहते हैं।

अच्छे पढ़े-लिखे लोगों के घर में भी कितनी विलक्षण बातें देखने में आती हैं। बड़ा भाअी विवाह करके अपनी पत्नी के साथ आनंद करता है। यह देखकर बालविधवा छोटी बहन घुटघुट के दिन निकालती है। अपनेको सुधारक बताने के बहाने बूढ़ी माँ को भी यों तो दान-पुण्य के लिये दो पैसे देना दूभर है। अिधर सात-आठ बच्चे जनने के बाद औरत हड्डियों का ढाँचा रह जाने पर भी पतिदेव अपने मन को रोक नहीं पाते। संतति-नियमन नाम का भी कोअी अुपाय अिस संसार में है, अिससे अुन्हें क्या वास्ता? मर्दों की जीभ का चटोरापन शांत करने के लिये चतुर औरतें रात-दीन अपने आपको रसोअी-घर में गोंधे रहती हैं। मानो भोजन ही मनुष्य-जीवन का ध्रुव-ध्येय हो।

भावी पीढ़ी की माता तथा वर्तमान पीढ़ी की गृहिणी अुनका भला फिर अैसे जीवन में क्या विकास होगा? और जबतक अिनका कोअी विकास नहीं, पुरुष का मानसिक संसार भी भला क्या सुखी होगा?

थोडी-सी भी वायु बहने पर जैसे पवनचक्की चल पडती है न? अिस प्रवास में मेरी भी वही दशा हुअी। अेक अेक छोटे से छोटे दृश्य द्वारा मेरे मन में विचारों की अुत्ताल तरंगें अुठने लगतीं। मैं सोचता, हमारी सेवा अभी सबल नहीं बनी। हम अपने आपको धोखा दे रहे हैं; जान हथेली पर लेकर लड़ने की ज़रूरत होने पर भी हम सुलह कर रहे हैं। शत्रु की शरण जा कर नामोशभिरी संधि कर रहे हैं।

विचारों का यह तूफ़ान कभी कभी असह्य हो अुठता। मन में आता, चलो, पुष्पा से ही मिल आयें। परंतु वहाँ पिताजी का विवाह जो था। और प्रवास में किसी किसी बार अैसे अैसे अनुभव होते कि अुनसे मन की निराशा की छाया कहीं की कहीं काफ़ूर हो जाती।

अेक दिन अेक मालदार के घर दो घंटे निष्फल चर्चा चलाने के बाद घरवालेने मुझे यों ही टरका दिया। मैं घर से निकला कि मेरे पीठपीछे ही अेक पच्चीस साल की विधवा भी बाहर आयी। वह अुस घर की लड़कियोंको पढ़ाती थी। यह मैंने बाहर निकलते वक्त देखा था। मुझसे अुसे क्या काम हो सकता है? मैं सोच न सका। मुझे लगा, शायद अुसे अपने संबंध का कोअी अनाथ लड़की आश्रम में भेजनी हो। अिस पर मन-ही-मन मैं हँसा भी कि यदि यात्रा में पैसों के बजाय अनाथ औरतें ही मेरे पल्ले पड़ीं तो?

मैं कुछ रुका तो वह औरत पास आयी, अुसने मुझे प्रणाम किया। मैंने भी अुसे प्रणाम किया। अिसके बाद अेक शब्द भी बिना बोले अुसने अेक रुपया मेरे सामने किया। अुसे लेते हुअे मेरे अंतःकरण को तो बड़ा आनंद हुआ किंतु मेरी आँखें भीगती हुअे बगैर न रह सकीं।

और वह दो सौ रुपयेका दान ! अुसकी कथा तो किसी अुपन्यासकार के काम भी आ सकती है। अेक गाँव में अेक दिन सभा प्राप्त होने पर अेक मनुष्यने मुझे दो सौ रुपये की थैली ला कर दी। अुस गाँव में अितना बड़ा दान देनेवाले का नाम टीप लेना जरूरी था, पर पैसे देनेवाला किसी तरह नाम ही न बताता था। जब मैंने ज़िद ही पकड ली. तो वह मनुष्य सभा में जिस ओर औरतें बैठी हुअी थीं, अुस ओर मुझे ले गया। वहाँ बिल्कुल अेक तरफ़ अेक औरत खड़ी थी। अुसका वेश अुसकी अुम्र देखते हुअे कुछ रंगीला-सा लगा। अुसने शायद आँखों में काज़ल भी लगाया रखा था और पान खाने की भी अुसे आदत-सी लगती थी।

मैंने अुससे अुसका नाम पूछा तो वह बोली, कि 'भला नाम जान कर आप क्या करेंगे?'

'भला नाम जाने बिना मैं पैसे कैसे ले सकता हूँ?'

अिसपर क्षणभर तो वह खिन्न हुअी किंतु तुरंत ही वह हँसती हुअी बोली, कि 'यदि नाम बिना बताये ही किसीने अितने पैसे मेरी माँ को दिये होते तो शायद वह अिस गंदे धंधे में मुझे कभी न पड़ने देती।'

● ● ●

मुद्रा झनकार करे अिसलिये अुसमें कासा मिलाते हैं न? मनुष्य के स्वभाव में भी अच्छे-बुरे की अैसी ही मिलावट होती है। और अिन अनमिल सुरों की मिलावट से ही तो जीवनसंगीत मधुर होता है —

पुष्पा के स्वभाव का मत्सर भी तो अिसी मिलावट की मिसाल है। मेरे पहले पत्र का अुत्तर देते वक्त तो शायद वह गणित की कोअी पुस्तक ही पास रखकर बैठी होगी। दूसरे पत्र में देवीजी कुछ शांत हुअी दिखायी दीं! और तीसरा पत्र तो कोअी अुपन्यास सामने रखकर अुसने लिखा होगा। कितने मज़ाक में लिखा था अुसने, कि 'फाअुंटनपेन में स्याही भरपूर है या नहीं यह भलीभाँति देखभाल कर ही मनुष्य को पत्र लिखने बैठना चाहिये।

नहीं तो कभी कभी अंतिम का अक्षर लिखने के वक्त भी वह दगा दे जाती है ! आपने पत्र के अंत में जो 'तेरा अशोक' लिखा, तो क्या अेक 'ही' लिखने के लिये ही स्याही समाप्त हो गयी थी ? आपका भी भला अिसमें क्या दोष ? अबके स्नेह-संमेलन में प्रोफ़ेसरों को अुपहार देते वक्त स्याही की अेक बडी बोतल ही आपको भेंट दी जायगी ! अेक अक्षर से भी कितना अनर्थ होता, पता है तुम्हें ? 'तेरा अशोक' के बदले अगर 'तेरा ही अशोक' लिखा होता तो भला और कितनी स्याही खर्च हो जाती ?'

● ● ●

अशोक का वह फोटो प्रेमाने देखा और सुशीला को भी दिया था। वह कितनी देर तक अुसे देखती रही। आखिर अुसने मुझसे पूछा 'यही अपना अशोक है न?' वाकई देवी है यह। परायापन तो नाम को भी नहीं है अिसके पास! यह अपना सौतेला लड़का है, अिसने मेरी शादी न होने देने की कोशिश की थी, आदि कोअी दुर्भावना अिसके मन को छू तक नहीं सकी। शादी के समय का अंतर्पट दूर होने के वक्त से हमेशा हँसमुख ही दीखती है। वैसे अभी ज़रा लजाती है, पर कोअी चिंता नहीं। अब तो घर में कोअी बड़ा-बूढ़ा नहीं, तो क्या हमेशा ही अिस तरह थोड़े ही लजाती रहेगी? गला भी बहुत मधुर है अिसका। क्योंकि सोने के समय प्रेमा जो ज़िद करती है लोरी गाने की, अतः हमें भी पता लग गया गले के सुरीलेपन का। कभी कभी अिच्छा होती है कि प्रेमा की भाँति मैं भी हठ करूँ, कि 'तेरे गाये बगैर मुझे भी नींद नहीं आती।' पर यह लाज की दीवार है न बीच में, खैर यह भी हटेगी ही। और अेक महीने में नामशेष हो लेगी।

और सुशीला प्रेमा को जो गीत सुनाती है वे भी कितने धार्मिक होते हैं। वे सिनेमाशाही गाने नहीं, जिन्हें आजकल के कच्चेबच्चे भी गलियों में ललकारते फिरते हैं। चाहे अभी नाक की रेंट पोंछना न आता हो, पर 'अुस देश चलो सजनी' तो चिल्लाते ही फिरते हैं। परसों ही जब मैं मंदिर में दर्शन करने जा रहा था तो अेक छोकरा, जिसके शरीर पर फटा लँगोटी तक न थी, गा रहा था 'अिक बँगला बने न्यारा। सोने का बँगला!'

सभी जगह गधों का जमघट है। पर सुशीला सीधी-सादी देहाती है। घर को ही अपना संसार माननेवाली सच्ची आर्य स्त्री है। परसों अुसका वह गाना – 'धाव पाव नंदलाल' – मैं बाहर खड़ा सुन रहा था। सुनकर मेरा अेकदम गला-सा भर आया। मुझे पलभर तो अैसा लगा कि मानों मेरा ही बालक गुम हो गया हो!

हमारे कुल-दीपक चिरंजीव यह शादी होने नहीं देना चाहते थे। याने अीरान में हमने अंतरिक्ष की ओर निहारते हुअे जो पच्चीस साल काटे, यहाँ आकर बाकी वय भी अुसी तरह बितायें, यही शायद अुसकी मंशा थी।

क्यों भाअी, आखिर तेरे पेट में दर्द क्यों होता है? मैं किसी जवान लड़की से शादी कर रहा था सो तो ठीक, पर अिसपर कुछ तेरा प्यार थोड़े ही था? समाज का सुधार करने चले हैं बच्चू। अरे, कहीं कहीं लड़कियों को लड़के तक नहीं मिलते। पहले अुसकी तो व्यवस्था करो। कोअी वयस्क प्रौढ़ जवान लड़कियों से शादी करें या न करें, अिसका कमिशन तो बाद में बिठाना।

बाकी अशोक तो क्या? अशोक का बाप भी अिस विवाह को नहीं टाल सकता था। ब्रह्मदेव की बाँधी हुअी गाँठ कहीं दर्जी की कैंची से थोड़े ही कतरी जा सकती है? मंगल, गुरु और शुक्र तीनोंने ही जब दासोपंत का लग्नलेख लिख दिया वहाँ कोअी भी मुफ्त में अक़्ल के तारे तोड़े तो अुनका भला क्या अुपयोग? ग्रहों की ही कृपा न हो तो अितनी झटपट भला हमारे दो हाथों के चार हाथ कैसे हो जाते?

चार ही क्यों, आठ हाथ कहने चाहिये। प्रेमा, प्रभाकर भी तो अब मेरे ही हो गये न? छोकरी कितनी प्यारी है! अिन थोड़े से दिनों में ही मुझे अिससे कितना मोह हो गया। कोअी और अगर मुझे अुसके साथ देखे तो यही समझे कि मैं ही अिसका बाप हूँ!

यह प्रेमा अगर न होती तो शादी के बाद भी मुझे कुछ कठिनाअी ही होती, क्योंकि सुशीला ठहरी लजीली और प्रभाकर रहा कॉलेज का छात्र! किंतु यह गुड़िया होने से दिन मानों चुटकी बजाते ही कट जाता है। मैं पूजा में जब भगवान् का भोग लगाता हूँ तो यह दबे पैरों चुपचाप आकर अुसे खा जाती है। तेरे गाल शक्कर से मीठे हैं कहकर अुसका प्यार लेने पर कहती है कि तब तो मैं बड़ी होकर शक्कर का ही कारखाना खोलूँगी। ये आजकल के बच्चे भी बड़े चतुर हैं। पहले के लोग जो बात साठी में भी समझ नहीं आते थे, वह आजकल ये आठी में ही जान जाते हैं। अेक बार स्कूल में जाते समय अिस छोकरीने मुझसे कुंकुम बारीक कर देने को कहा। करता भी क्या? बालहठ का भी क्या कोअी अिलाज है। और कल जो अिस लड़कीने मुझसे बेनी बाँधने की ज़िद की तो समझो अपनी तो आ बनी! और शादी के समय पृष्ठरक्षिका के रूप में भी यदि मुझे बुलाया तो? क्या पता भला बाबा अिसका!

बाकी आजकल अपना समय कितना सानंद कटता है। अीरान में घर बिल्कुल खाने को दौड़ता था। वहाँ, अुठते ही अेक काले-कलूटे लड़के से अपना पाला पड़ता था। अब तो अैसा अनुभव होता है कि मैं बिल्कुल गधा ही था, जो अीरान में अितने दिन अकेले निकाले। बीबी-बच्चों के बिना घर, याने बिल्कुल जंगल, मरुभूमि, ज्वालामुखी ही समझो। आजकल तो मानों हम नंदनवन में हैं! सबेरे ही स्नान करके सुंदर धोती पहिनकर, देवघर में बैठकर दो घंटे तक पूजा करना, अिसके बाद भोजन करके दो घंटे आराम, तीसरे पहर चायपान करके 'केसरी'* अथवा 'ज्ञानेश्वरी'† पठन करते हुअे लेटना। प्रेमा के स्कूल से आते ही अुसे साथ लेकर शाम को मंदिर में दर्शनार्थ जाना। सभी कुछ कैसा करघे के सूत-सा सीधा चल रहा है। सुना है चातुर्मास के लिये वे लुंगी बाबा भी यहाँ शीघ्र ही पधारेंगे। फिर तो दूध में शक्कर मिली समझो। अुनके दर्शनों को रोज़ जायेंगे। बाबा बिल्कुल अक्खड़ हैं तो भी अुन्हें कोअी सिद्धि अवश्य प्राप्त है। और वही चाहिये भी! कोरी विद्वत्ता को लेकर क्या चाटना है? यों विद्वान तो हमारा अशोक भी बहुत बड़ा है।

सुशीला ज़रा ज़्यादा लजीली है। अभी अपने साथ कुछ परायापन-सा बरतती है, यही थोड़ी मुझे शिकायत है। वरना तो अपने राज्य में सब कुछ दुरुस्त है! और यह शिकायत भी क्या शिकायत है? कल अेक बच्चा हुआ कि काफ़ूर समझो। कहते हैं कि पहले बच्चे के साथ ही स्त्री ससुराल में बोलने लगती है!

आज सुबह सुशीला से जो थोड़ी-सी छेड़छाड़ की, वैसी बीच बीच में अवश्य होती रहनी चाहिये। क्योंकि बिना गरमी पाये बर्फ़ पिघलेगा कैसे? सबेरे खिड़की में से जो बाग में देखा तो सुशीला फूलों की टोकरी लेकर घर में आ रही थी, तो अपने राम बीच के दरवाज़े के परदे के पीछे धीरे से जा दुबके। यों तो मेरे जैसे मनुष्यों का परदे के पीछे दुबक जाना भी अेक कमाल ही समझो। सुशीला अपनी धुन में थी ही, अुसने जैसे ही बीच के दरवाज़े का परदा जो हटाया तो —

* लोकमान्य तिलक द्वारा संस्थापित मराठी अखबार।
† संत ज्ञानेश्वरने लिखा हुआ 'श्रीमद्भगवद्गीता' का काव्यमय मराठी अनुवाद।

किसी नाटक-सिनेमा में अैसा प्रसंग आया होता तो दर्शक तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल गूँजा देते। सुशीला शरमाकर पीछे मुड़ी तो मैंने कहा, 'रास्ता बंद है!' तो अुसने रेडिओ की ओर मुड़कर कहा, 'अपना भी क्या जाता है? रास्ता खुले तबतक हम रेडिओ ही सुनेंगे!'

तब मैंने सोचा अगर अिस वक्त यों ही अिसने रेडिओ छेड़ा तो चाहे जिस स्टेशन के स्वर कानों से टकरायेंगे अिसका अिसे शायद पता नहीं। अतः मैंने अुसके आगे होकर कहा, कि 'मुझे अुस रेडिओ का नहीं, अिस रेडिओ का गाना सुनना है —'

'अिश्श' (छिः)

मराठी भाषा भी कितनी मधुर है, अिसे यह दो अक्षरों का शब्द साबित नहीं करता क्या?

मैंने सुशीला से कहा कि – 'अभी तो तुम बहुत ही लजाती हो!'

तब तो वह और भी लजा गयी, तब मैंने अुसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा कि 'तुम्हारे आने से यह घर कैसा भराभरा दीखता है!'

अुसने धीरे से मेरे हाथ में से अपना हाथ खींचकर कहा कि 'क्या, मैं सचमुच अितनी विशाल हूँ?'

अंत में अुसने लजवंती-सा लजाना, मानों छोड़ ही दिया।

अुसी समय अुसका ध्यान बालकृष्ण के अेक फोटो में लगाकर मैंने कहा, 'बस, अब सिर्फ अेक ही बात की कमी है!'

'वह कौन-सी?'

'अभीतक नहीं समझी? अरे भई, फूलों बिना बाग़ की शोभा नहीं, अगर बच्चों बिना घर की शोभा नहीं!'

'लड़का तो मेरा है न?'

मैं देखता ही रह गया तो वह बोली —

'अशोक क्या मेरा ही लड़का नहीं है?'

● ● ●

१

सु शी ला

'अशोक'! कितना प्यारा नाम है, पर वे तो कभी भूलकर अेक बार भी नहीं लेते। प्रेमाने अखबार में जब अशोक का फोटो दिखाया था तो अुनके माथे पर कैसी शिकन पड़ गयी थी! यद्यपि वे बड़े ममतामय हैं! देखने पर किसी को लगे कि जैसा प्रेमा और प्रभाकर अुनके ही बच्चे हैं! किंतु अशोक का नाम लेने पर —

अिसे स्वभाव कहें या नसीब? अच्छा खासा पढ़ा-लिखा प्रोफ़ेसर बेटा, अुसका मुँह देखने को तो वे तैयार नहीं और कल की नन्ही-सी साली प्रेमा, वह अगर कोअी भी ज़िद ले बैठे, खड़े पैरों पूरी करने को वे तैयार! यह देखकर मेरी जैसी क्या करे? हँसे या रोये?

अशोक हम लोगों की यह शादी नहीं होने देना चाहता था, तथा शादी के पहले ही वह गाँव छोड़कर बाहर चला गया, केवल अिसीलिये न अुसपर अुन्हें अितना क्रोध है? किंतु जिस कारण ये अुसका मुँह तक देखना नहीं चाहते, अुसी कारण तो अुसे मुझे शीघ्र देखने का बहुत मोह है! न जाने कब देखूँगी। ये तो अुसे अपने से होकर बुलाने से रहे, और वह अपने आप अिस घर में पाँव रखने से रहा। कल से कॉलेज खुलेगा तो वह

भी बाहर से वापिस आ ही जायगा। तब मैं अुससे मिलने जाअूँगी तो — शायद यह अिन्हें न बिल्कुल रुचे। पर पगली आशा अमर है न? अुसे लगता है, आज या कल अशोक अपने को मिलेगा ही मिलेगा। वह अगर राह में जाता दिखायी दिया तो — मैं हलदी-कुंकू या मंगलगौरी (शादि आदि) के लिये किसी के यहाँ गयी और वह वहाँ सरबत पीने या भोजन करने आया तो — चाहे कहीं भी वह दिखायी दे तो मैं अुसे तुरंत ही पहचान सकूँ? अतः मैंने अुस दिन का अखबारवाला फोटो काटकर रख लिया है न! अुसे जब भी देखती हूँ तो अुस दिन रात को मेरे घर आने वाला अशोक अेकदम आँखों के सामने आ खड़ा होता है।

अुस रात को तो मैं अिस जीवन में कभी न भूल सकूँगी! अुस दिन यदि ज़रा शांति से मैंने अशोक की बात सुन ली होती, तो — तो क्या होता? यह विवाह न हुआ होता? कौन जाने? अशोक मुझे और क्या सुझाता?

और कोअी मार्ग भी तो मेरे सामने खुला न था। दादी के वे शब्द रह रह के मेरे कानों में गूँजते थे कि, 'सुशी, लड़के के लिये तो सारा संसार घर है, पर लड़की को तो घर ही संसार है।' और मेरे अुस छोटे से संसार में सिर्फ़ तीन ही मुँह थे, पर अुन्हें भरने में मुझे तीनों त्रिलोक याद आ गये! यों तो मनभाये मनुष्य से शादी करने को ही अगर मैं अड़ी रहती तो प्रभाकर का पढ़ना समाप्त हो जाता तथा प्रेमा का भी हाल बेहाल होता। और अितने पर भी मेरा ही कौनसा स्वयंवर रच जाता! अशोक को भला अिसकी क्या कल्पना होगी? प्रभाकर को यह सब साफ़ साफ़ पता था तो भी वह अेक का अेक वाक्य ही रटता रहता था। 'जीजी! तेरी ज़िंदगी की यों धूलधानी होते खुली आँखों भला मैं कैसे देखूँ?' वह मन-ही-मन घुले नहीं, अतः मैं कहती, 'तू तो पगला है रे, प्रभाकर! अरे पगले! अिस धूलधानी की धूल तो सर पर चढ़ाने से रही। हाँ, जीवन के धानी रंगों का मैं अवश्य सौदा करूँगी और अुसे बेचकर अपनी प्रेमा और प्रभाकर की थाली के आसपास जीवन भर अुससे रचना करूँगी।' अितने पर भी वह जब नहीं हँसा तो मैंने अुसे वह भाभी वाला गाना गा कर सुनाया। कितना मज़ेदार है वह गाना। अेक घर में बड़ी ननद और भौजाअी बैठी हैं। भौजाअी अपने पतिदेव की बाट देख रही है।

बड़ी ननद के सामने वह भला यह बात कैसे कहे? पर अैसी बातें ज़बान पर चाहे न भी आयें किंतु नैनों में तो अवश्य नाचने लगती हैं। गालों की लाली में भी फूट पड़ती हैं। अेक भौजाअी का मन अिस प्रकार नीचे-अूपर होता निरखकर ननद कहती है—

कुणितरी लाजत पाहत कां?*
हळु हांसत कां?
नच बोलत कां?
मनिं मूक अेक कां बाला?

अिस प्रकार मज़ाक जारी था, कि बाहर किसी का पगरव सुनाअी दिया। खरगोश की-सी चपल भौजाअी तुरंत अुस पगध्वनि को पहचान गयी और तुरंत ही अुसके गालों पर गुलाब-ही-गुलाब खिल अुठे। वह दरवाज़े की कड़ी खोलने चली कि अिस बीच बड़ी ननद अपना अधिकार जताये बगैरे क्यों चुप रहती? अुस लजीली का हाथ थाम और अुसे रोक-कर वह कहती है—

नांव ध्या गडे! जा मग दारीं†
नाचत नयनीं
लाजत वदनीं
गोड बोल तो बोला!

---

* कोअी लजाती क्यों देखे?
हौले हौले क्यों हँसे?
बोलती कुछ क्यों नहीं?
यों मूक है क्यों अिक बाला?

† पहिले लो नाम! और फिर जाओ द्वार पर
नाचते नयनों से
लजीले वदन से
फिर मधुर बोल बोलो

प्रभाकर का मुँह बंद करने के लिये विवाह होने तक मैं प्रतिदिन ये गीत अुसे सुनाती रही। मेरी शादी चाहे किसी से भी क्यों न हो, पर कल जब तू पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बन जायगा तो तेरा सुख ही मेरा सुख होगा। अिस प्रकार कह कहकर मैं अुसे सानंद रखती रही। परंतु विवाह होने के बाद वही गाना याद आता है तो मन को न जाने कैसी अेक अुत्कंठा बेचैन बना देती है। प्रभाकर की बहू को मज़ाक करनेवाली ननद शायद मिल भी जाय, पर मेरे लिये वह कहाँ से आये? और कोअी होती तो भी पचासी की अुम्र पार करनेवाली बुढ़िया भौजाअी से क्या मज़ाक करने बैठती? 'नाम लो' कहकर मेरे पीछे पड़नेवाला कोअी नहीं तो भला मुझे अिस बात का अितना बुरा क्यों मानना चाहिये? कभी कुछ देर हो जाय और वे मंदिर से शीघ्र नहीं लौटते तो न जाने क्यों मेरा मन अूँचा-नीचा होने लगता है। कुशंकायें होती हैं, प्रेमा बड़ी चंचल है, किसी मोटर के नीचे आ गयी हो? अुन्हें भी कम दीखता है, और संध्याबाती हो जाने पर भी साअिकिल और मोटरों की आवाजाही की धूम कम नहीं होती। बहुत से बाअीसिकल वाले मरे बत्ती भी नहीं रखते। अैसी ही किसी साअिकिल का ढक्का लगने से वे कहीं गिरगिरा न पड़े हों?

परंतु अुस गीत का-सा नाज़ुक अनुभव मुझे कभी नहीं होता!

वाजवि दारीं *
पाअुल स्वारी
गालिं लालि ही लीला!

पर मैं तो शांति से द्वार खोलती हूँ, प्रेमा मुझसे लिपट जाती है। कभी कभी अुनका हाथ भी छू जाता है किंतु अुससे मन में न जाने क्यों कोअी अुत्कट अुत्कंठा नहीं होती।

यों तो अिनकी-सी ममतावाले मनुष्य हजारों में दस-बीस ही मिलेंगे! परंतु मुग्ध मनों का मात्र ममता से कहीं समाधान होता है? सबेरे मुझ से पहले

---

* द्वार बजते ही
किसी के पगरव से
गालों पर लाली की लीला!

वे अुठ पड़ते हैं । रात को कुछ गरमी के कारण जो ओढ़ना मैं पाँवों के पास रखकर सो जाती हूँ अुसे वे सवेरे की सर्दी से मुझे बचाने के लिये कितने हलके हाथ से अुढा देते हैं । मानों कोअी माँ अपनी संतान की हिफ़ाज़त करती हो। अुस ओढ़ने से शरीर को तो सुख मिलता है, पर मन चाहता है वे छोटे बच्चे की तरह कान में कुर्र करके मुझे जगायें । बाहर घूमने के लिये साथ चलने को कहें या तो फिर सफ़ेदी न फैले तबतक दोनों बातें करते ही बैठे रहें !

किंतु मुझसे क्या बातें करनी चाहिये, अिसका अुन्हें शायद कुछ पता है या नहीं कौन जाने ! सुशीला याने बड़ा हो जानेवाली प्रेमा ऐसा तो वे नहीं समझते न ? क्योंकि प्रेमा को जिस भाँति वे खिलौनों की दूकान में ले जाते हैं, अुसीतरह मुझे भी गहनों की दूकान पर ले जाते हैं और कहते हैं, 'जो कुछ तुझे पसंद हो वह ले लो ।' हाल ही में कपड़ों की अेक नयी बड़ी दूकान खुल रही है । अुसमें बंबअी में जो फैशन कल निकले, वह वहाँ अेकदम आज ही मिलेगी । वह दूकान खुलनेसे पहले ही अुन्होंने मुझसे वहाँसे ज़री की अेक साड़ी दिलाने को कहा है ।

वे प्रेमाके सारे हठ पूरे करते हैं, और मेरा तो कोअी शब्द भी खाली नहीं जाने देते । आखिर अुन्हें हमसे अितने नबने-दबने की क्या ज़रूरत है ? पाँच-दस वर्ष हमारी गृहस्थी का गाड़ा चल चुका होता, और मैंने अपनी सेवा से अुनपर धाक जमा ली होती, तब तो अुनकी अिस प्रकार की नम्रता कुछ समझ में भी आती । आज तो लगता है, जैसे अपने हाथ से कोअी बड़ी भूल हो जाने पर जिस प्रकार अुसकी पूर्ति के लिये मनुष्य मधुर व्यवहार करता है, कुछ अैसा ही बरतावा वे करते हैं । तो क्या अुनके द्वारा होनेवाली भूल — यह शादी –– वास्तव में अुन्हें खलती है क्या ?

अिस शादी के लिये यों तो मैंने मौसी को लिखा ही था कि मैं खुशी से तैयार हूँ, तथा अशोक जब मेरे घर आया तो अुससे भी मैंने यही कहा था । सिर पर मंगलाक्षत पडने तक भी मेरा यही खयाल था कि प्रभाकरऔर प्रेमा को भी सँभाल सकनेवाले किसी व्यक्ति के साथ ही मैं शादी करूँगी और आनंद से जीवन बिता दूँगी ! अुस वक्त कुछ अैसी ही मेरी मान्यता भी थी।

परंतु अत्यंत प्रेमी पति से पाला पड़ने पर भी कहीं कुछ गलती हो गयी है अैसा लगता है । मैंने बचपन में जिन दिनों मेले में काम किया था, अुन

दिनों के अेक गाने की मुझे अब भी रह रह के याद आती है। वह दो लड़कियों का अेकसाथ दो गाना था। पहले पहल मेरे साथ जो लड़की पार्ट करती थी, अुसका गला माठा था, किंतु बिल्कुल बारीक। अतः वह जब मेरे बाद गाती या अुसके पश्चात् मैं गाती तो हमारी आवाज़ भली भाँति न मिल पाती। कितना भी ज़ोर लगाने पर रंग न जमता। किंतु अुसकी जगह जब अिंदु नाम की दूसरी लड़की आ गयी तो वही गाना खूब रंग जमाता। हम दोनों के स्वर मिलकर अेकरस हो जाते। यदि हम दोनों को पर्दे के पीछे खड़ा कर दिया जाय तो अिंदु का स्वर कौनसा और सुशीला का कौनसा यह पहचानना लोगों के लिये बड़ा कठिन था!

तो क्या विवाह भी अुसी दो गाने की तरह होता है क्या? पतिपत्नी दोनों बहुत भले हों, अितने मात्र से संसारशकट नहीं चलता। संसार का सच्चा सुख पाने के लिये अिसके सिवा भी बहुत कुछ चाहिये। अुस बहुत कुछ में भला, पैंतालीस साला पुरुष, बीस-बाअीस की बाला दोनों का जीवन की ओर देखने का अेक दृष्टिकोन कैसे संभव है? दोनों के दो स्वर, दोनों की दो दृष्टि होना सर्वथा स्वाभाविक है।

धर्म-कर्म, पूजा-पाठ की बात लें तो यह अतर फौरन समझ में आ जाता है। मैं भी नियम से भगवान् को फूल चढ़ाती हूँ, परंतु अुनकी तरह चार चार घंटे तक भजन में भला मेरा मन कैसे लग सकता है? आषाढ़ी और कार्तिकी के पर्व पर मैं भी प्रतिवर्ष विठोबा के दर्शनार्थ अवश्य जाती हूँ। परंतु प्रतिदिन सायंकाल मंदिर जाने की बजाय, पतिपत्नी कहीं घूमने ही क्यों न जायँ? भगवान् क्या केवल मंदिर में ही है?

कहीं अुनकी यह भक्ति गलत रास्ते तो नहीं लगेगी न? परसों दोपहर की ही बात है। लुंगी बावा नाम का कोअी बाबा भगत है। वह यहाँ आनेवाला है, अिस बात के विज्ञापन के लिये अुसकी शिष्यमंडली मार्ग में भजन करती जा रही थी। जिस प्रकार किसी नाटक कंपनी के नगर में आने के पहले अुसके अेजंट धूमधाम से विज्ञापन करते हैं, अुसी प्रकार ये शिष्यगण भी अपने भगत-गुरु का ढिंढोरा पीटते चले जा रहे थे। बहुत से बहुत हो सकता था कि अुन्हें कुछ भिक्षा दे कर आगे बढ़ने दिया जाता, अुसके बजाय अुन्होंने अुन सबको घर में बुला बिठाया, अुन्हें दूध और केले का

फलाहार कराया और अिसके साथ ही अुस भगतराज की गौरवगाथा शुरू हो गयी। अेक शिष्यने कहना शुरू किया कि 'भगवान् स्वयं आकर हमारे भगतराज के साथ ताश खेलते हैं। अिसी प्रकार अेक बार भगवान् बैठे खेल रहे थे कि अुधर वैकुंठ में खाने के लिये अुनकी बाट देखते देखते थाली में परोसा भात रखा रखा बिल्कुल ठंडा हो गया। अिसपर लक्ष्मीजी बहुत बिगडी कि वक्त पर भोजन भी नहीं करते। तब अुन्होंने खोजने के लिये नारदजी को भेजा। नारद को आया देखा तो भगवान् हड़बड़कर अुठकर दौड़े! किंतु अिस गड़बडी में अुनका शख वहीं छूट गया। अब भी हमारे भगतराज के पास वह विद्यमान है!'

मुझे लगा कि यह बिल्कुल पगले की भाँति क्या बक रहा है, किंतु वे यह सब बडे भावपूर्वक सुन रहे थे। अितने में दूसरे शिष्यने कहा कि 'डॉक्टरोंने अेक स्त्री के बारे में बताया कि अुसके गर्भाशय ही नहीं है, किंतु हमारे भगतराज की सेवा में जब वह रही, तो अुसके अेकदम जुडवाँ बच्चे हुअे।'

तब अैसी बेवकूफों की बातें भी भला क्या सुनी जायँ? यह सोचकर मैं खाने के लिये घर के भीतर गयी। क्योंकि मैं अकेली ही अभी बिना खाये थी। मैंने थाली परोसना शुरू किया कि अिस बीच सुनाअी पड़ा कि वे किसी पर ज़ोरों से बिगड़ रहे हैं। मैंने सोचा, प्रेमाने कोअी अूधम तो नहीं किया न? अतः मैं तुरंत ही बाहर आयी तो देखा दरवाज़े में अेक अठारह-अुन्नीस साल का लडका खडा है। और वे अुसे गुस्से से कह रहे थे कि 'चल, चलता हो। यहाँ कुछ नहीं मिलेगा तुझे।'

अुस लड़के की शक्ल देखते ही मेरा जी भर आया। अुसका कोट फटा हुआ था। अुसका चेहरा भी रूखा-सूखा था। परंतु वह लड़का मुझे प्रभाकर की भाँति लगा। मैंने सोचा, बिचारे को कोअी बहन न होगी और हो भी तो अुसे कोअी संपन्न दूजवर न मिला होगा! अगर मेरे प्रभाकर का भी अिसी प्रकार दूसरे के दरवाज़े जाने की बारी आये और अुसे कोअी यों धुतकार दे तो —

वह अुस लुंगी बाबा के शिष्यों की बातचीत के बीच में ही आ टपका, यही अुसका सबसे बड़ा अपराध था! बिचारा दो दिन का भूखा था। आज भी

दोपहर टला जा रहा था, अुसने सोचा, कि चौका अुठ जाने पर शायद कुछ न मिल सके, अतः वह बीच ही में बोल पड़ा। बस अितनी-सी बात पर वे अुसपर बिगड़ पड़े और अुससे 'चले' जानेको कहा, किंतु वह टलता ही न था, क्योंकि अुसे अुन शिष्यगणों के खाये केलों की छालें और दूध के खाली प्याले नज़र आ रहे थे।

अुनकी नाराज़ी देखकर मैं भी मन में घबड़ा गयी, जिस प्रकार राख अुड़ जाने पर चिनगियाँ चमकती हैं, वैसे ही लग रहे थे वे। अिस बीच अुन शिष्यगणों में से दो-तीन अुस लड़के को मारने के लिये अुठे। तब तेज़ी से वह बिचारा चल दिया।

तब मैं चटपट पीछे के दरवाज़े से बाहर आयी तो वह चबूतरे से अुतरकर दूसरी ओर मुड़ ही रहा था कि मैंने अुसे अिशारे से बुलाया। अुसे अिस बात पर शायद अचरज हुआ हो, परंतु वह धीरे धीरे चला आया। तब मैंने यह सोचकर कि कहीं बीच में वे अंदर न जायँ, अतः अेकदम आखिरी कमरे में अुसे खाने को दिया। तब पहला कौर मुँह में देते ही अुसने मुझे कुछ अैसी दृष्टि से देखा कि मानों सारे संसार की कृतज्ञता अुसकी आँखों में अेकत्र हो गयी हो! और मैंने स्वयं अभी कुछ न खाया था, अिसका तो मुझे कोअी खयाल ही नहीं रहा। दूसरी ओर वह तेज़ी से खा रहा था। लगभग आधा खाना खा लेने पर अुसने मुझे पूछा कि 'बहन, आपने अभी खाया या नहीं?'

अिस पर मैंने सोचा कि सच कहूँगी तो अिसे संकोच होगा। अतः मैंने कह दिया 'हाँ'।

तब वह हँसकर बोला कि मालूम होता है अभी आपको घरबार सँभालना नहीं आता। मैं अुसके अिस कथन का ठीक मतलब न समझ सकी और असमंजस में पड़ गयी तो वह बोला कि 'आजकल प्रतिदिन भोजन हो जाने पर अगर अितना अन्न बच जाता है तो –' कहते कहते अुसकी आँखों में पानी भर आया।

अच्छे भले पढ़े-लिखे लड़कों की तरह वह बातें कर रहा था। मेरे मन में आया अिसके नाम-धाम-घरबार आदि के बारे में पूछूँ कि अिस बीच

स्वयं अुसने ही बतलाना शुरू किया। सौतेली माँ के ज़ुल्मों को बर्दाश्त न कर सकने के कारण वह बचपन में ही घर से भाग निकला था। अुसके बाद अुसने प्रत्येक घर अेक अेक दिन खाकर मैट्रिक पास कर लिया। फिर बंबअी जाकर खूब खूब नौकरी खोजी। अंत में अेक मिल में अुसे नौकरी मिली भी तो बीमार रहने लगा। तब अुसने बंबअी छोड़ दी और बहुत जगह भटका किंतु कहीं नौकरी तो मिली नहीं। अेवं घर वापिस जाने का मन न होता था।

हाथ धोते हुअे वह बोला, 'पता है आपको आख़िर मैंने क्या निश्चय किया था?'

'क्या निश्चय किया था भला?'

'बस, आख़िरी आसरा आत्महत्या का था, क्योंकि अिस संसार में अब जीने का कोअी अर्थ न था!'

'नहीं भाअी! अैसी वैसी बात मनुष्य को कभी मन में न लानी चाहिये।'

'अब मैं कदापि आत्मघात न करूँगा! अब मुझे अेक बढ़िया मार्ग मिल गया है।'

मैंने पूछा, 'वह क्या?' कि अितने में पनघड़े में ठंडे पानी के मटके का बर्तन बजा। शायद वे पानी पीने आये थे। अुन्हें यह दीख गया तो — अतः मैंने अुसे तुरंत अिशारे से पीछे दरवाज़े से भगा दिया। वह बाहर गया ही था कि अितनेमें वे वहीं आ गये।

दरवाजा खुला देखकर वे बोले, 'यह दरवाज़ा कभी खुला मत रखा करो। आजकल गाँव में चोरियाँ बहुत हो रही हैं। थोड़ी देर पहले ही वह मुष्टंडा देखा था न? खुला होता तो पीछे से आकर अवश्य कुछ न कुछ ले भागता?'

यह कहकर वे हँसे, मैं भी हँसी कि अुन्हें बुरा न लगे। अुस लड़के के साथ अुनका रूखा व्यवहार मुझे बिल्कुल न भाया पर वे परदेश में पच्चीस साल अकेले जो रहे थे! अैसे आदमी में थोड़ासा रूखापन होना स्वाभाविक ही है। अीरान से अुनका कोअी मित्र बंबअी आया था, अुसने अुनकी विवाह वाँच्छ मौसाजी से कही तो होते होते यह विवाह भी हो गया। यह

सब होने पर भी प्रेमा और प्रभाकर को ये कितने प्यार से रखते हैं ! अतः अिनके अिस अुपकार की क़ीमत चुकाना ही अब मेरा काम है । मेरे मन में कुछ न कुछ चूक-सी खलती है तो भी मैं पूर्ण सुखी हूँ, यही अब मुझे दरसाना है । लोग भगवान् को भोग लगाते हैं और वे प्रसन्न हो जाते हैं । तो क्या फिर मेरी जैसी जनम दुखिया को सुख के दर्शन से ही संतोष न मानना चाहिये ?

● ● ●

१०

अ शो क

दौरे से लौटने के बाद नयी माँ और पिताजी से किसी न किसी दिन कहीं न कहीं मार्ग में मुलाकात हो ही जायगी, यह ख़याल मन में अक्सर आ ही जाता। अगर मुलाकात हुअी तो पिताजी हाथ की छत्री से रास्ता रोकेंगे? पर सुशीला, शायद वह अिस अभिमानवश मुझे मात्सुर्य से देखेंगी कि देख तू जिस विवाह को रोकने चला था, वह आख़िर हो के रहा या नहीं?

अपने मन में मैंने अैसे ही अनेक तर्क कर रखे थे। किंतु वे सभी ग़लत साबित हुअे। क्योंकि आने के पहले ही दिन हम लोगों की भेंट हो गयी और वह अेक नयी ही शुरू होनेवाली कपड़े की दूकान में। आश्रम की औरतों को मैं साड़ियाँ दिलाने साथ ले गया था। वहीं अुस समय पिताजी भी सपरिवार आये थे। मैं शायद औरतों के जमघट में होने के कारण अुन्हें न दिखा होअूँ पर अुनका अुस पहाड़ी आवाज़ में बोलना हम सबको सुनाअी देता था! अुन औरतों की कलबल सुनकर पिताजी बोल ही तो अुठे 'राम जाने कहाँ का जनानखाना घुस आया है यहाँ!' अुनका यह वाक्य सुनकर औरतें और भी हँसने लगीं अिसलिये सुशीला का ध्यान भी मेरी ओर आकृष्ट हुआ। मुझे देखकर अुसके मुख पर स्मित की रेखायें अुमड़ पड़ीं। मुझे

तो अिससे अचरज ही हुआ ! अितनेमें पिताजी गरम हुअे कि – ' अरे भाअी, यहाँ साड़ियाँ देखने आयी हो या आदमी देखने ? '

किंतु अिस बात का कोअी अुत्तर न देकर सुशीलाने आगे बढ़कर मुझे आवाज़ दी, ' अशोक — '

' क्या है, सुशीला देवी ? '

' मैं देवी-दानवी कुछ नहीं ! '

' तो फिर ? '

' मैं तुम्हारी माँ हूँ ! '

' माँ ? '

साथ ही अुसकी आँखों और स्वर से अुमड़कर बहनेवाली कोमल भावनाने पलभर में ही मुझपर विजय प्राप्त कर ली। अतः मैं सहसा बोल अुठा, ' तो क्या चाहिये माँ को ? '

' माँ को और क्या चाहिये ? अपनी संतान मिल गयी तो सब कुछ मिल गया। चलिये, मेरे साथ घर चलिये ! '

' चलिये ? माँ कुछ संतान से अजी-अजाँ में बात नहीं करती ! '

' अच्छा ! अब घर चल। '

पिताजी हम दोनों की ओर नाराज़ी से निहार रहे थे, पर माँने अुधर ध्यान ही नहीं दिया। वह बोलीं ' घर कुछ अिनका अकेले का ही थोड़े है ? झट बता, कब आयेगा ? '

जब मैंने शाम को ही घर आने का तथा चार-छः दिन रहने का वादा किया, तभी मेरी मुक्ति हुअी !

दोपहर को जब पुष्पा को यह बात बताअी तो वह तो रूठ ही गयी। मैंने सोचा, मेरे और पुष्पा के बीच कोअी न कोअी स्त्री आती ही रहे, यह कोअी दैवी संकेत तो नहीं ?

कॉलेज में पढ़नेवाली पुष्पा जैसी लड़की का मन अितना संकुचित भला क्यों है ? अिसी विषय पर सोचता सोचता शाम को मैं पिताजी के घर पहुँचा। पुष्पा के बारे में सोचते सोचते मुझे अुसपर दया आ गयी। अुसके घर में अुसके सामने जबतक चिंतोपंत और मैनाबाई की लीलायें जारी हैं, तबतक अुसके मन में अुदात्त विचार भला कैसे और कहाँसे आयेंगे ?

घर पर माँ को देखते ही मैं सारे शूल भूल गया। क्योंकि अुसकी आँखों में मिलने की अुत्कंठा थेअी थेअी नाच रही थी।

मैंने पूछा ' पिताजी कहाँ हैं ? '

' मंदिर गये हैं ! '

' घर में देवता होने पर भी न जाने लोग देवालय में क्यों जाते हैं ? '

' देवता भी तो बड़े मनमौजी होते हैं ! '

' यह सर्वथा सच है ! ये देवता कोअी आदमी अपने घर आये तो कहते हैं अपनी ' राह लो ' । और कुछ दिन बाद यदि वही आदमी नज़र पडे तो घर आने का आग्रह करते हैं । '

' क्योंकि वह आदमी भयंकर, बहुत भयंकर होता है, अिसीलिये तो —'

अुस रात के हम दोनों के वार्तालाप पर हमने मज़ाक तो अवश्य किया, किंतु अेक ही दिन में मुझे मालूम हो गया कि अुस रात को कही गयी सारी बातों का अक्षर अक्षर अुसकी आँखों के सामने नाच रहा है। अगर वह नये घरबार में मन से घुलमिल गयी होती तो अुस रात की बातें अुसे याद रहने का कोअी कारण ही न होता !

फिर भी दूसरों के लिये अपने आपको भुला देने का अुसका स्वभाव ही है। अतः आने के साथ ही मुझे क्या क्या अच्छा लगता है ? चाय में शक्कर कम चाहिये या ज़्यादा ? चाय दिन में कै बार चाहिये ? साथ ही ठंडे पानी से नहाता हूँ या गरम से ? सब कुछ अुसने पूछताछ कर जान लिया। वास्तव में छोटी छोटी बातों में ही सुख का मूल है ! यह पुरुषों की अपेक्षा औरतों को ही अधिक अनुभव होता है !

माँ के जितना ही पिताजी ने भी अिस बात का मुझे अच्छा अनुभव करा दिया, किंतु वह अपने निराले ही तरीके से। मुद्दत में तो मैं घर आया था, सो भी चार दिन में ही चला भी जानेवाला था। वे अगर मुझ से दो शब्द बोले होते तो भला अुन का क्या बिगड़ जाता। किंतु अुन्हों ने बिल्कुल मौन व्रतका ही पालन किया। क्यों कि मनुष्य के मन में यदि अहंकार और प्रेम दोनों का द्वंद्व छिड़ जाय तो पहले की विजय ही स्वाभाविक है। बिचारे पिताजी ही भला अिस के अपवाद कैसे बनते !

प्रेमा को जब मैं मौसी कहकर बुलाने लगा तो वह नटखट छोकरी बोली, 'भला मैं तुम्हारी मौसी कैसे हो सकती हूँ ?'

'क्यों नहीं हो सकती ?'

'मैं तो कितनी छोटी हूँ, मौसी तो बड़ी होती है।'

'परंतु बाघकी मौसी कौन होती है ?'

'बिल्ली।'

'तो बाघ बड़ा होता है या बिल्ली ?'

मेरे अिस तर्क से प्रेमा को पूरा समाधान हो गया। अब तो वह हमेशा मेरे ही आसपास रहने लगी। और प्रभाकर तो कॉलेज में जानेवाला लड़का था, भला अुससे मेरी पटरी बैठने में देर ही कितनी लगती ?

और नयी माँ को भी बात करने को कोअी चाहिये ही था, सो हम सब अनजाने ही अेक हो गये और पिताजी बिल्कुल अकेले पड़ गये ! वह अुन्हें बहुत बहुत दूभर लगने लगा। तो भी वे अकेले ही बैठते। नयी माँ से भी चिड़चिड़पन से बात करते, मेरी ओर तो भूलकर भी न देखते। मेरे आने से दूध में नमक की डली अवश्य पड़ गयी थी, यह तो साफ़ साफ़ दिखता था।

पर मेरे आने के पूर्व भी दूध कुछ शुद्ध स्वच्छ न था, मेरा यह ख़याल भी सही निकला। तीसरे या चौथे दिन रात को मैं और माँ बैठे बैठे बातें कर रहे थे, पिताजी अपने कमरे में थे। हमारी बातों में से बातें निकलीं तो माँने भी अपना मन खोलकर दिखा दिया। अुस के जख्म देखने में जितने छोटे अुतने ही गहरे भी थे। अुस का अेक अेक वाक्य मानों सचाअी पर पड़नेवाला प्रकाशपुंज था —

'मेरी आँखों पर त्याग का पर्दा चढ़ गया था।' अुसने कहा।

—'तभी तो स्त्री को समाज में मार मारकर देवता जो बनाते हैं !'

—'अगर मैं तेरी माँ होने के बजाय तेरी बहन होती तो —'

—'हरी साड़ी को हरी ही ज़री चाहिये यह भी मैं अनुभव से ही सीखूँ, शायद अैसी ही हरीच्छा थी।'

अब माँ रोने लगी, वे आँसू ख़ून के थे, मुझ से वे देखे न गये तो मैं

अुसे धीरज बँधाने पास गया, अितनेमें किवाड़ खटकी, मुड़कर जो देखा तो पिताजी दरवाज़े से कान लगाये खड़े थे।

तब माँ को तो मैंने किसी प्रकार समझा दिया किंतु मुझे कौन समझाता? पुष्पा से सुशीला बहुत से बहुत तीन-चार साल बड़ी होगी। परंतु वह विवाह होते ही मेरे जैसे बड़े लड़के की माँ बन गयी। अुस पर लादा गया यह प्रौढ़पन — अगर अुस की जगह पुष्पा होती तो — या तो वह आत्महत्या कर लेती या तो अुस पति को ही नहीं-सा कर डालती। प्रेमा और प्रभाकर मात्र अिन दोनों के लिये ही माँने यह अग्निपरीक्षा दी थी। और अैसी अग्निपरीक्षा में से शरीर चाहे भले ही सुरक्षित निकल आये किंतु मन तो बुरी तरह झुलस जाता है। सीता को भी क्या अैसा ही अनुभव हुआ था? यह तो राम जाने!

घटनेवाली घटना में यदि माँ की कोअी भूल न थी, तो पिताजी की भी भला अैसी क्या भारी भूल थी? अुन्होंने अीरान में पचीस साल बड़े कष्ट से बिताये। अितने परिश्रम से अुपार्जित पैसे का अुपभोग सुख से करने का अुन्हें हरेक हक है। और अिस विवाह की बाबत अुन्होंने किसी पर कोअी दबाव नहीं डाला था। अुलटे विवाह के बाद अुन्होंने अपने साले-साली का पालन-पोषण भी सानंद स्वीकार किया था। अितने अुदार स्वभाव का व्यक्ति कभी किसी को भला जानबूझकर दुख दे सकता है क्या? कभी नहीं। माँ भी तो कहती है कि वे अत्यंत अच्छे स्वभाव के हैं। किंतु यह सब होने पर भी दोनों दुखी हैं। यह भी विधि की विचित्रता ही समझो।

सारी रात मैं अिसी बात का विचार करता रहा। माँ की स्थिति चक्रव्यूह में फँसे अभिमन्यु की-सी थी, वापिस आने की युक्ति अुसे मालूम न थी! और अगर अुस की जगह मैं भी होता, तो भी अैसी स्थिति में भला क्या करता?

और मेरे घर में रहने से तो दोनों का दुख और भी बढ़ेगा, यह मुझे अनुभव होने लगा। और अेक-दो दिन में ही सीखने का मैंने निश्चय भी किया। किंतु दूसरे ही दिन सबेरे ही मुझे अुसे अमल में लाना पड़ा। चाय के समय स्थानीय अखबार आये थे, अुन में हरेक में ही भगतराज लुंगी बाबा का फोटो, अुनका जीवन-चरित्र, व अुस गाँव में अुन के पधारने

का नखशिख समेत वर्णन भी छपा था। यह देख कर मुझे बड़ा रोष आया। किसी ने चार पैसे मुँह पर फेंके कि लगे ये संपादक अुन के गीत गाने।

मैंने माँ से कहा – 'माँ, यह अेक पगले का फोटो देखा क्या?'

किंतु माँ का ध्यान मेरी ओर खींचने से पूर्व ही पिताजी मुझे सरोष देखने लगे थे।

अतः मैंने विषय बदलने के लिहाज़ से पिताजी से कहा कि 'आपको चाय में शक्कर और चाहिये क्या?' पर वे कुछ बोले नहीं।

अिस पर माँ बोली, 'सुना क्या? अशोक पूछ रहा है, और शक्कर चाहिये क्या?'

अिस पर वे अुफने कि, 'मेरे कान साबूत हैं अभी; तुझे लगता है कि तेरा पति बहुत बूढ़ा हो गया है।'

'ये क्या पागलों की-सी बातें करने लगे?'

'पागलों की-सी! अच्छा, मुझे पागल बताकर पागल-खाने में भिजवाने का अिरादा मालूम होता है तुम दोनों का!'

अब वहाँ बैठने में सार न था, मैं दोनों को नमस्कार करके चल पड़ा। अिस पर माँ बोली कि 'अशोक चाय बिना पिये ही जा रहा है।'

'तो मैंने क्या अुसे चाय पीने को मना किया है?'

'आप को तो बच्चों की अितनी अभिलाषा है, फिर —'

'किंतु मुझे नन्हे-मुन्ने की अभिलाषा है, अैसे घोड़े की नहीं।'

अपने घर आने तक मेरे कान में पिताजी के वे शब्द गूँज रहे थे कि 'मुझे तो नन्हे-मुन्ने की अभिलाषा है!' पिताजी का अंतर्मन अुस अेक वाक्य में प्रकट हो गया था, अुन्हों ने दूसरी शादी क्यों की ये अिन चंद शब्दोंने बता दिया था। मुझे अब अपना मानसशास्त्र का ज्ञान हास्यास्पद लगने लगा। क्यों कि पिताजी जैसे वयस्क लोगों को लग्न नहीं करना चाहिये, यह मेरा मंतव्य था। किंतु केवल पत्नी के सहवास की ही अुन की अिच्छा अतृप्त नहीं रही थी। बल्कि अुनकी वात्सल्य की प्यास भी अभी बुझी न थी। अीरान में जो पचीस साल अुन्होंने निकाल दिये, वे भी

अशोक की बालमूर्ति सामने रखकर ही । अिस सतत चिंतन का क्या अुन के मन पर कम परिणाम हुआ होगा ?

यदि नयी माँ को शीघ्र ही संतान हो तो पिताजी का जीवन पुनः सुखी बन जायगा, अिस का मुझे दृढ़विश्वास हो गया । और संतान होने पर माँ भी शायद अुस के प्रेम में अपने साथ होनेवाला अन्याय भूल जाय ! पिताजी तो अुसे सर पर रखकर निश्चय ही नाचने लगेंगे । अुस के रूप में मानों दोनों का ही पुनर्जन्म होगा । और अुस पुनर्जन्म में आज के पिछले जीवन को दोनों स्वभावतः स्वयं ही भूल जायेंगे ।

घर आया तो पुष्पा का पत्र टेबल पर पडा था । —

‘ अशोक !

(प्रिय विय कुछ नहीं)

सौतेली माँ के साथ तुम्हारा समय बडे मजे में बीतता होगा ! क्यों न ? किंतु पुष्पा नाम की भी तुम्हारी परिचित कोअी लड़की है, अिसकी भी याद है न ? अब क्या है ! कॉलेज शुरू हो गया, अतः अब तो तुम्हारे पास वक्त ही कहाँ ? और अगर हो भी तो– कॉलेज, वह तारा, सौतेली माँ, आदि से तुम्हें फुरसत कहाँ ? सोचती हूँ गॉर्की ने ‘ माँ ’ अुपन्यास लिखने के बजाय ‘ सौतेली माँ ’ लिखा होता तो अधिक अच्छा होता, क्यों न ? मैं बहुत बहुत नाराज़ हूँ तुम पर ! यदि सुबह शाम मेरे साथ घूमना स्वीकार करो, तभी ये नाराज़ी दूर हो सकती है । नहीं तो देवता जिस प्रकार भक्तों पर प्रसन्न होकर अुन्हें वर देते हैं, अुसी प्रकार शाप भी दे देते हैं, समझे न ?

अितने दिनों तुम्हारी ही रही

पुष्पा ’

धत्, पगली कहीं की ! अुसे अपना प्रेम ही जीवन-मंदिर का कलश लगता है । किन्तु यह तो न कलश है न नींव ही । यह विचले मजले का सुंदर झरोखा है ।

● ● ●

११

सु शी ला

अशोक के आगे मैंने अपना मन न खोला होता तो कितना सुंदर होता। पर मैं भी क्या करती ? मैंने सोचा जैसे मंद आँच पर दूध गरम हो रहा है, अतः मैं निश्चित थी, किंतु आँचने अेकाअेक जोर पकड़ा और दूध औटने के बजाय अुबल पड़ा। कुछ अैसी ही हालत हो गयी थी मेरी ! विवाह के वक्त मैं अँधेरे गढ्ढे में कूद रही हूँ यह सोच कर अशोक मुझे पीछे खींचने के लिये दौड़ कर आया था किंतु अुस वक्त मैंने अुसे झिड़का दिया। पर मतलब की अूँची डाल से नीचे गिरने के बाद जब काफी ठेस लगी तो मुझे अुस निःस्वार्थ प्रेम की याद आयी तब मैंने अुन की मर्जी के खिलाफ़ अुसे घर भी बुलाया। सोचा कि अुस की बातों से मेरे मन का अुफान खूब अुभरेगा। परंतु अुसकी बातों से मेरे मन का अुफान अुफना नहीं, अुलटे सिगड़ी के अँगारों ने और ज़ोर पकड़ा। सब कुछ बिल्कुल विपरीत हो गया। अुन अँगारों में से घड़ाघड़ चिनगारियाँ अुड़ने लगीं। अिन चिनगारियों से भला साड़ी में कितने छोटे छोटे छेद हो जाते हैं। और अेक भी छेद हो जाने पर हम औरतों के मन में वह जला कपड़ा अशुभ लगने लगता है, और पहिनने में न जाने क्यों मन संकोच करने लगता है।

अशोक के चले जाने के बाद अुन की ओर देख कर न जाने क्यों मेरे भी मन में कुछ अैसे ही विचार अुठने लगे। हाँ, मात्र प्रेमा के साथ अवश्य वे अब भी बड़े प्रेम से पेश आते थे। परंतु प्रभाकर से अेक शब्द भी न बोलते। और मुझसे जो बोलते भी तो अैसा बोलते कि न बोले तो ही अच्छा। परसों की वह घटना भी कितनी विचित्र है? अुफ़! सारी रात मेरी आँखों का पानी बहना बंद नहीं हुआ। अुस दिन अुन के पैर में थोड़ी मोच आ गयी थी। मैं अुस पर आँवा-हलदी गरम करके लगा रही थी और वे न जाने किस ख़याल में आँखें मूँदे पड़े थे। कोअी भयंकर स्वप्न देख कर मनुष्य यकायक भड़भड़ा कर अुठ पड़े, अुस प्रकार अुन्हों ने आँखें खोलीं। और मेरी ओर देख कर वे बोले, 'सुशीला!'

वे मुझे नाम से कभी आवाज़ न देते थे। अतः वह आवाज़ सुनकर जिस प्रकार हलुआ में रवा पड़ने लगता है, वैसा आनंद आया।

परंतु सुख और दुख तो दोनों जुड़वाँ भाई ठहरे न?

वे आगे कहने लगे। 'मानो, मैं और अशोक दोनों बहुत बीमार पड़ गये हैं, डॉक्टरों ने दोनों की ही आशा छोड़ दी हो, अितने में यमराज तेरे सामने आकर कहे कि 'बता – अिन दोनों में से किसी अेक के प्राण मैं तुझे वापिस दे सकता हूँ,' तब तू अुन्हें क्या अुत्तर देगी?'

अिस पर सावित्री की कथा मेरी आँखों के सामने आकर खड़ी हो गयी। परंतु मेरी अपेक्षा वह बहुत भाग्यवान् थी। अुसने तो बच्चे माँगे थे। अतः यमराज को विवश होकर अुसका स्वामी लौटाना ही पड़ा। किंतु मेरे सामने अुपस्थित सवाल बड़ा बिकट था। बेटा बचाअूँ या स्वामी?

अतः मैं तो चुप ही रही। अिससे अुनका मन शायद और भी अुद्विग्न हुआ! अतः वे मुझे झँझोड़कर बोले, 'अशोक से तो चार चार घंटे तक घुटघुटके बातें होती थीं, अब क्यों दाँती मिच गयी?'

आँखों में रुका हुआ पानी पोंछकर तब मैंने अुत्तर दिया कि 'मैं तो दोनों के ही प्राणों की भीख माँगूँगी।'

'पर वह यमराज दे तब तो न?'

तब अुनके पैरों पर सर टेककर सिसकते हुअे मैंने कहा, 'मुझे तो ये चरण छोड़कर और कहीं नहीं जाना है।'

'परंतु मैं क्या माँगूँगा, पता है?'

मैं यह सर नीचे किये ही सुनती रही।

'मैं तो यमराज से कहूँगा कि अशोक को ही प्राणदान दीजिये। मेरा क्या है! मैं तो अब पका पत्ता हूँ।'

साथ ही हँसते हुअे वे बोले, 'आख़िर तो तू अशोक की सौतेली माँ ही है न! तुझे अुसका क्या दुखदर्द हो सकता है!'

सारी रात दुखिया आँखों का सावन भादों बनाकर मैं अुनकी बातों पर विचार करती रही। मुझे कुछ अैसा लगा कि अिन्द्रधनुष के सात रंगों की परख बहुत सरल है, पर मानव-मन के रंगों का परखना परम कठिन है। मन में तो अुफ़, न जाने कितने विभिन्न रंगकर हिलमिल कर हर बार कुछ न कुछ निराली ही छटा दिखाते हैं। दया और द्वेष, प्रेम और पीड़ा अुदारता और लघुता का मानव-मन में कब न जाने कैसा मिश्रण होगा, अिस का कोअी नेम नहीं। अिसीलिये तो मनुष्य के मन में सिर्फ़ सात ही नहीं बल्कि सात सौ रंग होते हैं।

अिस बीच अेक बात अब भलीभाँति निश्चित हो चुकी थी कि अशोक से हम लोगों का अंतर बहुत बढ़ गया था। अतः अेक गाँव में रहते हुअे भी अब हम लोगों को अेक दूसरे से दूर ही रहना होगा। वैसे वह परसों जब आया था तो मैं यह कहकर कि 'मेरे लिये तू अब बहू कब लायेगा?' अुसका खासा मज़ाक बनानेवाली थी, पर तब तो कह न पायी और अब मन की मन में ही रह गयी।

तभी तो मन के मुताबिक कोअी काम न बनने पर अक्सर दादी कहा करती थी कि 'आमों में बौर तो बहुत आता है, पर सभी बौरों में फल नहीं लगते।' अैसी ही हालत कुछ मनुष्य-जीवन की भी है कि अुस में आशा का बौर तो बहुत आता है -- पर सारा बौर फलता कभी नहीं। फलता अेकाध ही है।

अुन्हें अच्छा लगे अिस लिये अब मैंने घर में अशोक का नाम तक न लेने का निश्चय किया। आजकल वे सायंकाल प्रतिदिन लुंगी बाबा के मठ में बहुत जाने लगे थे। अिस लिये भी अिन दिनों वे खुश रहते। वे मठ से वापिस आते तो सुनाते कि बाबा किस प्रकार अपने अंतर्ज्ञान से

दर्शन के लिये आनेवाले लोगों के नाम बताते हैं, मैनाबाअी नाम की अेक मालदार महिला बीमार थी, वह कैसी भगतराज के हाथ फेरते ही अच्छी हो गयी ! बाबा के शिष्यों में बड़े बड़े डॉक्टर, वकील और संपादक लोग हैं । बड़े बड़े लखपतियों की औरतें भी अुन की सेवा के लिये अुन के सान्निध्य में मठ में ही रहती हैं । आदि बातों का जब वे बड़ा रसभरा वर्णन करते तो मुझे अुन के भोले पन पर तरस आता । परंतु अुन्हें बुरा न लगे, अिस लिये मैं अुन की बातें सुन कर अैसा दरसाती कि जैसे मुझे ये बातें बहुत भाती हो ! भले कितनी ही सुघड औरत क्यों न हो, जिस प्रकार रसोअी में कभी कभी वेशी नमक-मिर्च पड़ ही जाता है, मनुष्य का स्वभाव भी कुछ कुछ वैसा ही है । अेक ओर अशोक का स्वभाव अितना मीठा, परंतु अुसका धर्म-कर्म में बिल्कुल विश्वास ही नहीं । दूसरी ओर अिनका अिस सब में घोर अंध-विश्वास ! बेटा अेक सिरे पर तो बाप बिल्कुल दूसरे सिरे पर ! पर मैनें सोचा कुछ भी क्यों न हो, किसी प्रकार घर शांत रहे तो सब ठीक ही समझो ।

किंतु जैसे तूफ़ान के पहले समुद्र शांत होता है, यह भी कुछ वैसी ही शांति थी । अतः अेक दिन वे जब मठ से वापिस आये और अुन का दिया प्रशाद मुँह में डाल कर जैसे ही मैं रसोअी घर में जाने लगी कि वे बोले, 'ज़रा ठहरो तो — '

मैं खड़ी हो गयी तो वे मेरी ओर आधी पीठ करके हँस कर कहने लगे, 'ओह, आज मठ को जाते वक्त क्या सुंदर दृश्य देखे मार्ग में हमने ! अेक घर के दरवाज़े में खड़ा अेक छोटा बच्चा अपने बाप की मूँछें पकड़ कर खींच रहा था, – मैंने सोचा – यह आनंद अब अगली पीढ़ी के नसीब में कहाँ ? क्यों कि आजकल तो सभी जवान मूँछें सफाचट रखने लगे हैं । अतः जब अगली पीढ़ी के बापों को मूँछें ही नहीं होंगी तो बिचारे बच्चे खींचेंगे कहाँ से ? ही, ही, ही !'

किंतु अुन की अिस बात का कुछ मतलब मेरी समझ में न आया । मैं भी मुफ्त ही हँस पड़ी । अिस पर हँसने से आश्वासन पाकर वे फिर कहने लगे – 'रास्ते में अेक बाप अपने छोटे लड़के को गोदी में लेकर जा रहा था, अुस बच्चे ने मार्ग में बाप का चश्मा खींच कर फेंक दिया तो वह

टूटफूट गया। पर देखने वाले अुसे खासा तमाशा समझ कर हँसने लगे। तब बाप को भी क्या सूझी कि आप भी सब के साथ हँसने लगा और बच्चे का प्यार लेकर तथा अपना सामान समेट कर चल दिया।'

अिस पर मैं फिर हँसी तो ज़रा दूर जाकर मेरी ओर पीठ करके वे बोले, 'मेरी अेक अिच्छा है!'

'वह क्या है?'

'यही कि तुम भी थोड़े दिन लुंगी बाबा की सेवा में रहो।' अिसका जब कोअी अुत्तर न मिला तो वे पुनः बोले, 'सुन तो लिया न?'

'हाँ हाँ, सुन लिया!'

'तो फिर?'

'आप के चरणों के सिवा मुझे किसी की सेवा नहीं करनी!'

'किसी की भी?'

'हाँ हाँ! किसी की भी।'

'क्या, अशोक की भी?'

'अशोक तो मेरा लड़का है।'

'यह तुझे मुझे समझाने की ज़रूरत नहीं, पचीस साल तक अुसे मैंने ही पाला-पोसा है। जब से वह तुझे मिला है, तब से तू बहुत भड़क गयी है। स्त्री को जैसा स्वामी कहे, वही करना चाहिये! समझी? क्यों कि पति ही पत्नी का देवता है, यह शास्त्र और पुराण न जाने कब से कानों में और सर पर पुकार पुकार कर कह रहे हैं।'

'और पत्नी पति की देवी नहीं है क्या?'

'अैसी देवी जाय भाड में!'

वे बहुत चिढ़ गये थे, अतः जो मन में आये कहने लगे – 'पति कोअी परोसी थाली का भाजीपाला नहीं है; कुछ नीलाम का आअीना नहीं है! समझी?' अेक-दो-तीन करके मेरी अेक भी न सुन कर वे कहे ही जा रहे थे।

तब मैं अुनके पैर पकड़ने लगी तो वे और दूर हट गये। अतः फिर मैंने अपने मन को दृढ़ करके कहा, 'आप चाहे तो मेरा गला घोंट दीजिये, पर अुस पाखंडी बाबा की सेवा में मुझे न भेजिये।'

तब वे आपेसे बाहर होकर मेरे अूपर झपटते हुअे बोले, ' याने तुझे सेवा में भेजनेवाले हम बिल्कुल गधे हैं ? पति को गधा समझनेवाली औरत के मुँह पर कसकर — '

वे तमाचा मारने ही वाले थे, यदि अुस समय कहीं से वहाँ प्रेमा न आ जाती तो ! अगर अुन्हों ने चाँटा मार दिया होता तो बहुत अच्छा होता। क्यों कि अुस से मेरी अपेक्षा अुनकी आँखें कहीं शीघ्र खुल जातीं।

किंतु प्रेमा को देखते ही अुन्हों ने हाथ वापिस खींच लिया। वे अुसे अितना अधिक प्यार करते थे कि वह छोकरी अुन से ज़रा भी न डरती थी। अुस ने अुन से पूछा, ' पिताजी ! आप जीजी को मार रहे थे क्या ? '

शायद बड़े लोगों को अिन छोटे बच्चों का भगवान से भी अधिक डर लगता है। तभी तो वे हँसकर प्रेमा को थपथपाते हुअे बोले, ' छिः, मच्छर बहुत हैं यहाँ। अरे, मैं तो तेरी जीजी से मज़ाक कर रहा था, परंतु यह बडी डरपोक है। ' अिस पर प्रेमा भी हँसने लगी। मैं क्यों डर रही थी, अिसे भला वह क्या समझ सकती थी ?

अब अुन्होंने प्रेमा से ही बातचीत शुरू कर दी। अुन लुंगी बाबा के पास अेक देव है, वह तेरी जीजी को खूब सुंदर अेक गोरा गोरासा लल्ला देगा। पर तेरी जीजी तो वहाँ जाकर रहने को तैयार तक नहीं। अैसी ही सैंकड़ों बातें वे अुस से कर रहे थे। तब कचकड़े के बबुआ की तरह वहाँ सचमुच का लल्ला मिल सकता है, यह यदि बिचारी प्रेमा के बालक मन ने मान लिया तो अिस में आश्चर्य ही क्या है ? जब कि अुन के जैसे सयाने प्रौढ़ पुरुषों का भी जहाँ अैसी बातों पर विश्वास जमता हो।

और तब प्रेमा का वह बालहठ देखकर मैं हँसूँ या रोअूँ यही मुझे न सूझता था। मेरी कमर में लिपटकर वह कह रही थी, ' जी जी ! लल्ला मिलता है न ? तो जा न वहाँ ? अरे अुस मठ में तो मैं भी अकेली रह सकती हूँ। अिस में अैसी बात ही क्या है ? मुझे खेलने के लिये अेक नन्हा-मुन्ना चाहिये ! तू जल्दी जाकर ले आ न ? फिर मैं अुसे लोरियाँ गा गा कर खुलाअूँगी ! चँदामामा दिखाअूँगी। और बैठ बैठ बबुआ कहकर खूब खिलाअूँगी। '

चूहे को खिलाते वक्त बिल्ली जिस शांत किंतु क्रूर दृष्टि से अुसे देखती है, अिस वक्त अुन की भी कुछ अैसी ही वृत्ति मुझे नजर आयी। यह देख कर मैंने भी सोचा आगे-पीछे मरना तो है, फिर अैसे जीने का क्रूर खेल क्यों अधिक खेला जाय ?

अिस निबिड़ निराशा में ही मेरे मुँह से यह भी निकल गया कि 'तो चलो, मैं सेवा में भी रहूँगी ?'

जैसे मन चाहा फल अपने आप गिरे, अुसी भाँति मेरे स्वीकार के साथ साथ अुन्होंने तुरंत ही मुझे मठ में भेजने की तैयारी कर डाली। मैंने मन ही मन कहा — मेरे पिताजी के बारे में मेरी दादी जली भुनी थी। किंतु सारे ही बाबा कुछ बुरे नहीं होते। यदि मेरे सेवा करने पर भी संतान न हुअी तो संभवतः अिनकी अंध-श्रद्धा भी न रहे। और अगर मैं न गयी तो जैसे तैसे शांत होने वाला घर का तूफान शायद फिर अुमड़ पड़े। अिस से मैं ही क्यों न अँधेरे गढ़े में कूद पड़ूँ।

● ● ●

अँधेरे गढ़े में कूदने वाले मनुष्य के मात्र हाथ पाँव ही टूटते होंगे। परंतु अिस मठ में तो पल पल में मेरी भावना और श्रद्धा चकनाचूर हो रही थी।

मठ में पैर रखने के साथ ही मैं अुस लुंगी बाबा के पैर पड़ने गयी। तब अुसने सहज ही मेरी ओर देखा तो मुझे तुरंत बचपन में देखे हुअे अुस सर्कस के शेर का स्मरण हो आया। किंतु अिस चीते के लिये पिंजड़ा भी न था।

नमस्कार करके मैं अेक ओर खड़ी हो गयी और चारों ओर देखने लगी तो बाबा की ध्यानधारणा के स्थल पर बालगंधर्व और रघुवीर सावकार के स्त्री-वेश वाले फोटो लगे थे, साथ ही रामपंचायतन के चित्र के सामने ही अेक सिनेमा नटी के नाच का चित्र भी लगा था।

मेरा मन तो यह सब देखकर आक्रोश कर अुठा। क्या यहाँ आनेवाले सैंकड़ों लोगों को ये चित्र नज़र ही नहीं आते। भगवान के भजन करनेवाले

भगतराज को अैसे चित्रों का क्या प्रयोजन? यह सवाल क्या अुनमें से किसी को भी नहीं सूझता?

सच है, सूझने भी क्यों लगा? गोबर के कीड़ों को कभी गोबर की बदबू आती है क्या? अैसे भगतराजों के पीछे पड़ने वालों में मनुष्य कम, जानवर ही ज़्यादा होते हैं। फिर वे चाहे सियार हो या खरगोश!

वह चिंतोपंत और वह मैनाबाअी, अुन दोनों का ही चालचलन ठीक नहीं। यह अुन्हें सिर्फ पाँच मिनिट देखकर कोअी कह सकता है। परंतु वह अुसे साथ लेकर प्रतिदिन मठ में जो आता है, बाबा के कानों में घुसपुस जो करता है, वह मैनाबाअी बड़े नख़रे से बाबा की सेवा जो करती है, सभी कुछ विलक्षण है।

पहले ही दिन बाबा ने मेरी ओर अिशारा करके चिंतोपंत से न जाने क्या कहा कि तुरन्त ही चिंतोपंत मैनाबाअी के कान में घुसपुस करने लगा तब मेरी ओर देख कर वह कितनी हँसी। और साथ ही 'यह अशोक की माँ है' चिंतोपंत के ये शब्द भी मेरे कानों में पड़े तो मुझे अुसपर अुसका कितना क्रोध आया।

वैसे यह मठ गाँव से बाहर अेक ओर था, तो भी शाम को वहाँ अिन भक्तों की खूब भीड़ लगती। रोज़ बाबा दर्शन देने और पैसे लेने बैठते, तो अुन देने वालों के लिये मेरे मन में बड़ा धिक्कार आता। लगता मनुष्य और भेड़ों में कोअी फर्क़ नहीं है? अिस बाबा को रुपया भेंट करने वालों को मार्ग में अेकाध अंधा भी मिला होगा? चार-पाँच साल का अेकाध नंगा भूखा लड़का भी मिला होगा? पर अुनमें से किसी के हाथ पर अुसने पाअी भी न रखी होगी। और यहाँ अिस मुश्टंडे को वह आकर रुपया भेंट कर देता है।

यों रुपया देनेवाले की गोद में बाबा नारियल डालते तथा पैसा देनेवाले को तुलसीदल मिलता। जैसे दाम, वैसा काम! यों अुस बाबा के सामने रखी तश्तरी में पैसे डाल कर अुसके पैर पड़ने वालों पर किसी भी समझ-दार को तरस ही आयेगा। किसी को अपनी ग्रहदशा बदलनी थी, तो किसी को नौकरी चाहिये थी, किसी को संतान की भूख थी। तो अेक की रखेल औरत कहीं भग गयी थी, अुसे अुसका पता लगाना था। ये लोग

बाबा को आखिर क्या समझते थे? यही मेरी समझ में न आता। क्या, देव और दैव दोनों ही बाबा के झंगे के जेब में हैं?

परंतु बाबा बहुत बड़ा चाणक्य और चतुर था, यदि वह साधु न बना होता तो अवश्य अेक अुत्तम अभिनेता होता। बहुत पढ़ालिखा न होने पर भी वह धाराप्रवाह प्रवचन-कीर्तन करता था। ज्ञानेश्वरी की कठिन ओवियों का अर्थ भी बताता था, सांसारिक दृष्टांत देकर लोगों का मनोविनोद भी करता था। प्रसंग के अनुरूप मुख-मुद्रा भी बना लेता, अुसकी वाणी में भी सम्मोहन था। और यही अुसके धंधे की पूँजी थी। वह यूँ न तो वैरागी था, न तो अुसकी भगवान ही से भेट हुअी थी। हाँ, मैं हज़ारों लोगों को झुला सकता हूँ, यह अुसे अपने अनुभव से मालूम था। और अपनी अिसी शक्ति का लाभ लेकर वह किसी राजा-महाराजा की भाँति सदैव भोगविलास में लवलीन रहता था।

भजन-कीर्तन के वक्त अिसे पान खाने का मन होता, लेकिन पान खाकर अुस भीड़ में थूके कहाँ? तो कोअी न कोअी शिष्य सोने का पीकदान हाथ में लिये वहाँ हाज़िर ही होता। मैं जिस दिन मठ में गयी अुस दिन यकायक पीकदान का अधिकारी शिष्य कहीं बाहर चला गया था, अुस समय बाबा ने पीक थूकने के लिये जो मुँह बनाया तो अेक जरी की साड़ी पहने हुअी स्त्री ने अपने हाथ में वह पीक ले ली, अुस वक्त मुझे अुस पर न जाने कितनी घृणा आयी। पता चला कि वह संतान की सेवा में रखी हुअी बम्बअी के किसी सेठ की सेठानी थी।

अुस मठ में मुझे बिल्कुल अेक ओर अेकान्त कोने में अेक कोठरी दी गयी थी। अुलट पलट कर दो चेले प्रतिदिन मेरी खैर-खबर लेने आते, मुझे जो ज़रूरत होती ला भी देते। मठ के आँगन में से काफ़ी शिष्य आते जाते। पर मुझसे कोअी भी बोलता चालता न था। अेक प्रकार मेरी हालत किसी कैदी की-सी थी। चौथे या पाँचवे दिन मैं अपनी कोठरी के दरवाज़े पर खड़ी थी तो चार-पाँच शिष्य मेरे सामने से गुज़रे तो अुनमें से अेक का चेहरा मुझे कुछ परिचित-सा लगा। अुस दिन पिछले दरवाज़े से बुलाकर जिसे खाना खिलाया था, वही लड़का वह!

अुसे आवाज देने के लिये मैंने मुँह खोला ही था कि अुसने आँखों से

मुझे चुप रहने का अिशारा किया और मेरी ओर पुनः न देख कर वह चला भी गया।

आखिर यह कब से यहाँ चेला बना? अुस के चुप्पी के अिशारे का क्या मतलब है? यह सब सोचते सोचते मुझे रोना आता। तथा प्रेमा, प्रभाकर और अशोक की मुझे रह रह कर याद आने लगी। अुस दिन, सारे दिन किसी काम में भी मेरा मन नहीं लगा।

अँधेरा घिरने लगता कि मठ का विशाल ओसारा और भी डरावना हो जाता। वैसे तो बहुत पुराना मकान था। कहीं कहीं एकाध दीया टिमटिमाता होता। पर अुस धुँधली रोशनी में कुछ अजीब परछाअियाँ आँखों के सामने नाचने लगतीं और मन अेकदम डर जाता। रात बढ़ती जाती तो साथ ही सियारों का रोना भी सुनाअी देता।

दस के लगभग बजे होंगे। सबेरे के अुस लड़के के अिशारे का क्या मतलब हो सकता है? अिस बारे में मैं विचारमग्न थी कि मेरे पास प्रतिदिन आनेवाले शिष्यों में से अेक बड़ी तेज़ी से आया और बोला कि 'माअी! आपका पुण्य बहुत बड़ा है, गुरुमहाराज आपकी ओर ही आने को निकले हैं। वे जो अुपदेश दें, अुसे बिल्कुल शांति से सुनिये, कतअी किसी किस्म की चूँ चाँ न कीजियेगा? नहीं तो —'

तब सर पर लाठी का प्रहार होने पर जैसे मनुष्य बेहोश हो जाता है, वही हालत मेरी हुअी। वह बाबा अब मेरी कोठरी में आकर गुरुमंत्र देनेवाला था ——

अितने में ही स्वयं बाबा के शब्द सुनने में आये, वह चेलों से कह रहा था कि 'तुम लोग मंदिर में जाकर बैठो; अिस ओर किसी को पटकने भी न देना!'

अब बाबा कोठरी के अंदर आ गया था, अुसने किवाड़ें बंद कर दीं, किंतु कुंडी नहीं लगायी थी, अिससे मुझे कुछ आश्वासन मिला, मैंने तब खिड़की की ओर भी देखा, अुसमें छड़ें न थीं। तब तो मुझे और ढाढ़स बँधा।

वह धीरे धीरे मेरी ओर बढ़ रहा था। आलोक में आँखें चमकने से

नाग भी जहाँ का तहाँ कीलित-सा रह जाता है। अतः मैं अपने मन का सारा रोष आँखों में अेकत्र कर अुसे घूरने लगी।

वह कदम ब कदम आगे ही बढ रहा था, साथ ही ही ही करके हँसता हुआ वह बोला, 'मानों क्रोध तो नाक की नोक पर ही बैठा है। भले बैठे! किंतु वह मेरी, अेक फुंकार में अुड जायगा। मेरे मंत्रों में सामर्थ्य ही अैसा है।'

अब मेरी छाती अवश्य धड़कने लगी। तब वह अेकदम पास आकर बोला, 'कान तो कर अिस ओर; पुत्रप्राप्ति का मंत्र कान में ही कहा जाता है, यदि वह षट्कर्णी हो गया तो अुसका गुण चला जायगा।'

अुसकी अुस घोर विषैली नज़रने मेरे कलेजे का पानी पानी कर दिया। अब मुझे विश्वास हो गया कि मेरी अस्मत खतरे में है। मैं सिनेमा चली गयी तो बिगड़ जाअूँगी! अिसलिये तो दादी ने मुझे संगीत तक न सीखने दिया था। परंतु आज तो धर्म-कर्म के नाम पर सारे समाज को नचानेवाले अिस नरपिशाच की मैं बलि बनने जा रही थी।

अतः जब मैंने अुस खिड़की से बाहर कूदकर जान देने का निश्चय किया तो अुस नरपशुने मेरी कलाअी कसकर पकड़ ली।

अिसपर मेरा सारा शरीर पसीने पसीने हो गया। और मेरा गला रूँध गया। मेरी सारी सुधबुध शून्य-सी हो रही थी। अिस समय मैं कहाँ हूँ? अिसका शायद अशोक को पता भी न होगा। तो भी मैं अपनी जान पर आ बनी समझकर जोर से चिल्लाअी अरे, 'कोअी दौडो, दौडो, अशोक — दौडो —'

'अच्छा! अशोक!' वह राक्षस मुँह विचका कर बोला। अितने में धड़ाक से दरवाजा खुला, कोअी दौड़ता हुआ अंदर आया और अुस बाबा के गले में अेक फँदा डाल कर कस दिया तो वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा। और आवाज़ न दे सके जिसके लिये अुस के मुँह में कपड़ा ठूँस कर अुस व्यक्ति ने दीया (चिराग़) तो अेक फूँक से बुझा दिया तथा तुरंत मुझे साथ लेकर वह बाहर आँगन में आया। अुस आँगन के अेक कोने में अेक सुरंग-सी थी, अुसने तुरंत मेरा हाथ पकड़ कर अुसमें से मुझे निकाल कर बाहर सड़क पर ला खड़ा किया। वहाँ

सड़क की रोशनी में मैंनें देखा तो मेरी मदद करनेवाला यह वही लड़का था।

दुर्दैव ने थोडी देर पहले लबालब विष का प्याला मेरे होंठों तक ला दिया था किंतु तुरंत ही यह अमृत प्याला भी अुसीने ला दिया। अस्तु —

वह बोला ' माअी, चलो, भागो ! घर चलो। '

घर चलें ? किस घर चलें ? अुस घर ने ही तो मुझ पर यह वज्रपात किया था। मैंने अुस से कहा, ' मेरा कोअी घर नहीं। '

तब मेरे कहने का मतलब वह समझ गया और बोला, ' कोअी घर नहीं ? न सही, जाने दो, मेरे जैसा लड़का तो है न ! '

अिसपर अेकदम मेरा गला भर आया, और साथ ही अशोक की याद आते ही मैंने कहा, ' अवश्य ! मेरे घर तो नहीं, लेकिन लड़का अवश्य है। '

' यहीं ? '

' हाँ ! यहीं ! '

तब मैंने अशोक का अतापता बताया, जो कि घर आने पर बातों ही बातों में अुसने मुझे बताया था। अितने में ही सड़क से अेक ताँगा निकला, अुसे ठहरा कर हम दोनों अुस में बैठ गये। अब अुसे मुझे अशोक के घर पहुँचाकर बम्बअी भाग जाना था। क्यों कि यहाँ रहने पर अुस की जान को खतरा था।

वह बोला, ' आप नहीं समझ सकतीं। मैं जो यहाँ बना रहा, यह बाबा मुझ से अवश्य बदला लेगा। मुझे चाहे जैसे अुस दुनिया से ही विदा कर देगा। अुसकी मुट्ठी में सेठ-साहूकार हैं, अखबार हैं और हत्यारे भी हैं। बम्बअी बड़ी है, यहाँ किसी को किसी का पता चलना बहुत कठिन है। '

ताँगा आकर अशोक के घर के पास रुका। मैंने पहले ही हाथों की दो सोने की चूड़ियाँ उतार ली थीं, अुसे देने लगी तो वह लेता ही न था। अिस पर कृतज्ञता से मेरी आँखें भर आयीं। वह बोला, ' माअी, बम्बअी गरीबों की माता है, वहाँ मैं आपके आशिश से अवश्य कहीं पेट भर लूँगा। '

ताँगा आँखों से ओझल हो जाने पर फाटक खोलकर मैं अंदर गयी, पर मेरे पैर आगे न पड़ते थे। पाँव लड़खड़ाने लगे। क्यों कि अशोक के घर आखिर अितनी रात गये अैसी शर्मनाक हालत में आनेका अवसर मुझ पर आ पड़ा था। मैं पीछे मुड़ी तो अँधेरा ही अँधेरा था, प्रकाश की किरणें फक्त बाग में नाच रही थीं, सो भी अशोक के कमरे से आ रही थीं।

वस्तुतः बुखार चढ़ने पर मनुष्य पर अितनी सुस्ती सवार नहीं होती, जितनी कि बुखार के अुतार पर। मेरी भी वैसी ही हालत थी। मठ से भागने के वक्त मैंने अपने शरीर की सारी शक्ति एकत्र कर ली थी। पर अब मुझे चक्कर आने लगे। अैसा लगता था कि जैसे मैं बाग में ही गिर पड़ूँगी।

किसी प्रकार मैंने अुस के कमरे का दरवाजा खोला। वस्तुतः तो वह खुला ही था। अशोक कुछ लिख रहा था। किवाड़ खुलने की आहट पर अुसने मुड़कर देखा तो जैसे भूत को देखकर मनुष्य सहम जाता है। अुसकी भी वही हालत हुअी।

मैंने जब आँखें खोलीं तो मेरे सिरपर बरफ की कोथली थी। अशोक मेरे पास ही बैठा था। पाँच मिनिट में ही मुझे होश आ जाने पर अुसे कितनी खुशी हुअी। परंतु मैंने सोचा कि बेहोशी में ही मेरे प्राण क्यों न चले गये?

तब पाँच-सात टूटे-फूटे वाक्यों में मैंने सारी घटना बयान की। अब आगे क्या होना था, अिसका भविष्य मुझे स्पष्ट ही भासने लगा। अतः अशोक को संकट में डालने की अपेक्षा —

मैं अुठ कर दरवाज़े की ओर चली तो अशोक ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे पुनः बिछौने पर बिठा कर गुस्से से कहा, 'कहाँ चली तू?'

'जान देने!'

'किंतु तेरी जान अब तेरी नहीं, मेरी है; ध्यान रख, सारा संसार तुझे तज दे तो भी तू अब अकेली नहीं है।'

अशोक के अैसे शब्द सुन कर मेरा मन भर आया, अुस के प्रेम से मेरा कमज़ोर कलेजा दबसा गया। अशक्त होकर मैंने अुस के कंधे पर सर रख दिया, तब जैसे कोअी बाप भयभीत बेटी को थपथपाते अुस तरह वह मुझे दिलासा देने लगा।

अिसी बीच 'अरी मेरी माँ' कोअी चीख अुठा। हम दोनों ने दूर होकर देखा तो वह चिंतोपंत-मैनाबाअी और अुन के साथ अेक लड़की थी —

अब तो मैं लाज के मारे ज़मीन में गड़ गयी।

• • •

१२

अ शो क

नयी माँ के पास से लौटने के बाद मैंने अपने आपको काफ़ी काम में जुटा लिया था। जैसे कोअी कड़ुअी दवा मधु में दी जाती है, दुख का भी वही हाल है। अुसे यदि कामकाज़ के मधु में मिला दिया जाय तो फिर अितना कटु नहीं रहता। और कामों के साथ साथ मैंने पूना-बंबअी के अख़बारों के लिये बुआबाजी पर अेक लेखमाला भी लिखना शुरू कर दिया था। यहीं के अेक अख़बार, अेक भोंदू बुआ का विज्ञापन करके समाज का कितना नुकसान कर रहे हैं, यह मैंने पहले ही लेख में भली भाँति स्पष्ट कर दिया था। यह लेखमाला और हाथ के नीचे के अन्य काम पूरे करके अगला रविवार मैंने पुष्पा के लिये रिज़र्व रख लिया था।

परंतु दैव भी बिल्कुल किसी नटखट लड़के के समान है। मनुष्य के सुंदर सुंदर मनोरथ विस्तार कर देने में मानो अुसे मज़ा मिलता है।

अुस लेखमाला के दो लेख छप जाने से बड़ी खलबली मच गयी थी। अतः तीसरा लेख मैं बड़े अुत्साह से लिख रहा था। करीब ग्यारह बजने को थे, परंतु चंदु भजन में गया था और मैं लिखने में मस्त था।

किवाड़ खटके। कौन चंदु ! नहीं माँ !

तब बेहोश होनेवाली माँ को मैंने किसी प्रकार बिछौने पर लिटाया, पाँच मिनिट में ही वह होश में आ गयी। पर जान देने के सिवा अुसे और कुछ सूझता ही न था। अुसने किसी बीमार बच्चे की भाँति जब मेरे कंधे पर सर रखा और मैं अुसे सांत्वना देने लगा।

ठीक अितनी रात गये पुष्पा का मेरे घर आना! दुर्दैव ही है।

अतः पुष्पा को सफ़ाअी के लिये मैंने आवाज़ भी दी, पर वह रुकी ही नहीं। तो मेरा अहं भी जाग अुठा, पर पाँच ही मिनिट अपनी गलती मुझे खली। क्यों कि अहं के अभ्र से प्रेम का बौर बिखर जाता है। बाद में मैं बाहर भी आया, किंतु पुष्पा की मोटर चली गयी थी।

रातभर मैं माँ के सिरहाने बैठा रहा। वह बीच बीच में पागलों की भाँति न जाने क्या बड़बड़ाती, अुठ पड़ती और दरवाज़े की ओर दौड़ती!

सबेरे माँ की हालत कुछ ठीक होने पर मेरा पुष्पा के घर जाकर अुसे समझाने का विचार था। क्यों कि पुष्पा अल्हड़ होने पर भी सहृदय थी। अिसका मुझे पूरा पूरा विश्वास था।

किंतु भली भाँति अुजाला भी न हुआ था कि सड़क पर अख़बार बेचनेवाले चिल्लाने लगे कि, 'पाजी प्रोफ़ेसर ने लड़की भगाअी, लुंगी बाबा की धर्मपीठ पर हमला।' यकायक यह सुन कर तो मैं नौचक्का ही रह गया। आख़िर क्या किस्सा है यह जानने के लिये मैंने दो तीन पत्र खरीदे और पढ़े तो धक्-से रह गया।

आख़िर मेरे पीठ पीछे यह विषैला छुरा भोंकनेवाले कौन लोग थे?

मैंने माँ के हाथों कोअी अख़बार न पडने दिया तो अुस को क्या कान नहीं थे? वह सिसकती हुअी बोली, 'अशोक! मैंने कितनी बड़ी भूल की है? अगर तेरे पास आने के बजाय कोअी अंधकूप खोजा होता तो —'

'तो अपनी माँ की रक्षा भी न कर पाने का पश्चात्ताप अशोक को आजन्म बना रहता!'

'अैसी रक्षा से भी क्या लाभ? आख़िर ये बवंडर — '

तो अुसे दिलासा देने के लिये मैंने कहा, 'माँ! डाल से गिरे हुअे पत्ते ही सदैव बवंडर के साथ अुड़ते फिरते हैं परंतु डाल पर लगे हरे पत्ते सदैव अपनी जगह पर ही हँसते रहते हैं। तेरी जैसी देवी को जो दोष दे—'

होता हो, वहाँ तू कभी मत जाना, तू अिस तरह अँधेरे गढ़े में न कूद, तुझे मेरे सर की कसम है।'

मेरी बातों से बढ़कर शायद मेरी शपथ का ही अुस पर प्रभाव पड़ा। वह जहाँ कि तहाँ ठहर गयी।

अिस पर पिताजी, 'बच्चा अगर प्रसव में जच्चा का काल बने तो अुसे काट डालना चाहिये?' कुछ अैसा ही बड़बड़ाते तेज़ी से चले गये। मैं माँ को हरगिज न जाने दूँगा अिसका अुन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था।

पिताजी के चले जाने पर माँ बोली, 'अगर तू ने कसम न दी होती तो अच्छा होता।'

मैं अुसे कुछ अुत्तर दूँ, अिसी बीच चंदू अेक पत्र लेकर अंदर आया) पत्र पढ़ते पढ़ते मैंने मध्य में ही सर अूपर अुठाया तो देखा माँ का मुँह अेकदम पीला पड़ गया था।

मेरे पत्र पूरा करते ही अुसने काँपते हुअे स्वर में पूछा, 'और क्या आफ़त आयी?'

मैंने हँसते हुअे कहा, 'कुछ नहीं। मुझे यों ही कॉलेज से बुलावा आया है।'

● ● ●

माँ को जवाब देते मैं हँसा तो सही, पर वह हास्य कृत्रिम था। मैंने सोचा, कलतक मेरा जीवन अेक क्रीडांगण था, आज से वह सचमुच रणांगण बन गया है! मैं चाहता था, मेरे जीवन में भी कभी बिजली चमके, किंतु निरभ्र आकाश में बिजली कभी नहीं चमकती। बिजली चमकने के पहले तो बादलों को जल से भरपूर हो कर झुक जाना चाहिये। सचमुच वे अब भरपूर भरकर झुक गये थे।

कॉलेज के बाहर खड़े हुअे छात्रालय के छात्रों के जमघट को देखकर ही मैंने आने वाले प्रसंग की पूर्ण कल्पना कर ली। अख़बारों द्वारा सबेरे लगाअी हुअी आग भड़क कर अुसकी ज्वालाअें कॉलेज तक पहुँच चुकी थीं। छात्रों का प्रणाम लेता लेता जब मैं आगे बढ़ रहा था, अुस समय अेक छात्र ने जिस के हाथ में वह अख़बार था, मेरे देखते अुसके टुकड़े टुकड़े कर दिये। तब अुस की यह मौन सहानुभूति मुझे बहुत ही सुहाअी।

पर अंदर गया तो वहाँ वालों में सहानुभूति का नाम तक न था। प्रिन्सिपलसाहब अेक बुत की तरह बैठे थे। किसी की मृत्युशैया के पास जैसे मंद स्वरों में बोलते हैं, अुसी प्रकार कार्यकारिणी के सदस्य गुपचुप घुसपुस कर रहे थे। मेरे सहकारी भी मुझे साशंक दृष्टि से देख रहे थे।

बाहर छात्रों का अुत्साह अुमड पड रहा था। अुस विलक्षण जमघट का 'अशोक निर्दोष हैं, अशोक निर्दोष हैं' का निर्घोष अंदर सुनाअी दे रहा था। अेक बार तो स्वयं प्रिन्सिपल को भी अिसी लिये अुठ कर खिड़की के पास आना पडा। अुन्हें देख कर वे अवश्य चुप हो गये।

और अन्दर अिन्साफ करने के लिये बैठे हुअे सभी बड़े लोगों के मुख पर अेक भाव अंकित था कि 'अशोक गुनहगार है'। मेरे मन में आया कि मनुष्य जैसे जैसे बड़ा होता जाता है, वैसे वैसे मानवता पर अुस की श्रद्धा मानों कम होती जाती है। वयस्क व्यक्ति का अच्छी की अपेक्षा बुरी बात पर ही शीघ्र विश्वास बैठता है। जीवनयात्रा में पाँवों में चुभने वाले काँटों की कल्पना से अुन का मन अितना सुन्न हो जाता है, अतः आसपास में विकसित सुमनों की सुवास का भी अुन्हें आभास भी नहीं होता। कल रात वास्तव में क्या घटना घटी, अिसका तो न बाहर के विद्यार्थियों को ही सच्चा पता है न तो अंदर के अधिकारियों को ही। सत्य सदैव सात पर्दों के पीछे छिपा होता है, पर—

प्रिन्सिपल साहब मुझे मुखातिब करके बोले, 'अशोक! आज तुम्हारे कारण हमारे कॉलेज के नाम को कलंक लगा है।'

मैंने शांति के साथ पूछा, 'आप अिस खबर को सच मानते हैं क्या? वह मोटे शीर्षकों में छपी है, अिसी लिये। याद रखिये, अखबारों में जैसी गंगा होती है, अुसी तरह गटरें भी होती हैं।'

वह 'वृषभ' पत्र का भूतपूर्व संपादक भी कार्यकारिणीमें था, अतः वह अिस बात पर आपेसे बाहर होकर चिल्लाने लगा, कि 'अशोक को अपने शब्द वापिस लेने चाहिये!'

अब माथा ठंडा रखना कठिन था, अतः मैं अुन सभी को अुद्देश्य करके बोला, 'मैंने जो कुछ कहा, अुसका अेक शब्द भी झूठा नहीं है। कहिये, पाठकों की मानवता जगाने का काम आज कितने अखबार करते

है ? झूठमूठ भविष्य छापकर लोगों को ग्रहों का गुलाम बनाते हैं । सिने-सितारों की प्रशंसा के पुल बाँध कर अल्हड़ लड़के-लड़कियों के पराक्रम की कल्पना विकृत बनाते हैं । किसी मक्कार महात्मा के तत्त्वज्ञानका तुनतुना जोरों से बजाकर अुन्हें जीवन का आक्रोश न सुनाओ दे, अिसका बड़ी खूबी से खयाल रखते हैं । सत्यनारायण का वर्णन, और बाबा के चमत्कार छाप कर वे लोगों को निर्बुद्ध बनाते हैं । '

मैं और भी न जाने कितना बोलता ।

प्रिन्सिपल बीच ही में बोल अुठे, ' अशोक ! तुम्हारे जैसे मेरे प्रिय छात्र तथा अिस कॉलेज के अिस समय सब से लोकप्रिय गुरु द्वारा अपनी संस्था के मुँहपर अैसी कालोंच लगे, यह शोभनीय नहीं । '

जगत् के रंग कितनी जल्दी बदलते हैं, यह मोटी फ्रेम और मोटे काँच का चश्मा लगा कर अपनी कोठरी में बैठे अितिहास पढ़नेवाले मनुष्य को भला क्या पता चलेगा ।

तब मैंने प्रिन्सिपल की नज़र से नज़र मिला कर कहा, कि ' मैं पवित्र हूँ । '

अितने में ही कोओ अखबार फड़फड़ाता हुआ बोला, कि ' ये रही अिन की पवित्रता की पताका । '

अब प्रिन्सिपल शांति के साथ बोले, ' तुम पवित्र हो न ? तो फिर अिन सारे अखबारों पर मानहानि का दावा क्यों नहीं करते ? '

अुस समय पलभर अदालत का दृश्य मेरी आँखों के सामने खड़ा हो गया । माँ को कठघरे में खड़ा किया जाय ? भला किस मुँह से वह अपनी कहानी वहाँ सुना सकेगी । विरोधी पक्ष के वकील अुसकी भावनाओं की चिंधी चिंधी अुडा देंगे । नाराज़ पिताजी की गवाही भी अुन के काम ही आयगी । पैसे के लिये बूढ़े से विवाह करके अपने सौतेले लड़के के साथ मौज़ मारनेवाली अेक काले कलेजेवाली औरत के रूप में लोग अुसे देखेंगे । छिः, माँ का जीवन कुछ वकीलों की विकृत बुद्धि या तमाशबीनों के मनोरंजन की वस्तु नहीं ।

अतः मैंने प्रिन्सिपलसाहब से कहा, कि ' अपने आदरणीय व्यक्ति की अदालत में विडंबना कराना मुझे अभिमत नहीं । '

तब अुन्होंने गरमी से कहा, ' और अपनी प्रियतम संस्थाअें कॉलेज और अबलाश्रम की विडंबना तुम अपनी आँखों देख सकते हो। आज के अखबार पढ़कर अिस कॉलेज में अपनी लड़की भेजने का कोअी भी सद्‌गृहस्थ साहस करेगा क्या ? और अबलाश्रम में भी —' कहते कहते अुन के मुँह से शब्द निकलना कठिन हो गया। तब सारी शक्ति समेट कर वे बोले, ' अशोक ! समाज सब कुछ सहन कर सकता है। पर वह अपनी आँखों के सामने अपनी नीति का खून कभी नहीं देख सकता ! '

अिस पर मैं भी क्षुब्ध हो गया। मेरा स्वर मेरे ही कानों को कर्कश लग रहा था। मैंने प्रिन्सिपल को लक्ष्य करके कहा, ' अपनी नीति का खून समाज नहीं देख सकता। किंतु निर्दोष मनुष्य का खून वह खूब खुशी से देख सकता है, क्यों न ? '

यह सुनकर सभी स्तब्ध हो गये। अिसे मैं अपने बचाव का अच्छा अवसर समझकर कहता ही गया, ' अिस खबर के पीछे अेक देवता के जीवन का कितना दुर्दांत दुःख भरा है, अिसको आप लोगों को — शाब्दिक नीति का डिमडिम घोष करने वाले समाज को कुछ पता है क्या ? चाहे घर की चहार-दीवारी में चिनकर कोअी स्त्री के प्राण ले ले, या रूढ़ी के राक्षस के पैरोंतले अुसके जीवन-कुसुम को कोअी भले ही कुचल डाले ? अथवा पतिपने के नादान अधिकार से कोअी अुसकी मनमानी विडंबना करे। तो यह सब सारा समाज खुशी आँखों हँसते हँसते देख सकता है। सर हिलाकर अुस पर अपनी सम्मति की मुहर भी लगा सकता है, अुसकी रक्षा के लिये अपनी अुँगली तक नहीं अुठाता। परंतु अुस स्त्री की सहायता के लिये यदि कोअी पुरुष अग्रसर हो वह अुसे प्रेम से अुसे साथ दे। तो ' खून, नीति का खून ' कहकर चिल्लाने के लिये यहीं समाज अेक पाँव पर खड़ा होकर तैयार है। अैसी नक़ली खोखली सामाजिक नीति की मेरे मन में अेक कौड़ी की भी कीमत नहीं। नीति मनुष्यों के लिये होती है, मनुष्य नीति के लिये नहीं होते। '

बोलते वक्त मैं प्रिन्सिपल की ओर देख रहा था। अुन की मुख-मुद्रा से अुन्हें मेरी बातों में सत्य जान पड़ने लगा था। किंतु ' मनुष्य नीति के लिये नहीं ' यह वाक्य होते न होते अुन की बगल में बैठे हुअे अेक

डॉक्टर ने अधबीच ही में अुठकर कहा, 'बस, अितनी देर में ये अेक ही बात तुम ने सच कही है। तुम्हारे जैसे यदि नीतिवान् बनने लगे, तो अैसे मज़ेदार पत्र हमें कहाँसे पढ़ने को मिलेंगे ?'

जवानी की भूल की कारण संकट में फँसने वाली कुँवारियों और विधवाओं के गर्भपात करा करा कर यों तो ये हज़रत धनवान बने थे, अैसा गाँव में प्रवाद था। और अैसा मनुष्य मुझे नीति का पाठ पढ़ा रहा था! अतः मैं अुसे मुँहतोड़ अुत्तर देना ही चाहता था कि प्रिन्सिपल ने अुस के हाथ से अेक पत्र लेकर मेरे हाथ में दे दिया।

अुसे खोलते ही मुझे बिजली का-सा झटका लगा। वे तारा के अक्षर थे। मैं जब पत्र पढ़ रहा था, तब डॉक्टर महोदय लुंगी बाबा की गर्दन पर होने वाले जख्मों का वर्णन कर कुछ कह रहे थे। अुस में कोअी कोअी शब्द बीच बीच में मुझे सुनाअी पड़ता था। क्यों कि मेरा सारा ध्यान अुस पत्र में लगा था। अेक बार, दो बार, तीन बार वह पत्र मैंने पढ़ा।

'प्रिय अशोक!

मैं मानती हूँ कि अपना प्रेम पाप है, परंतु मेरे हाथों यह पाप प्रति पल होता रहे, भगवान से मैं मात्र अितना ही माँगती हूँ। तुम मेरी ओर देख कर खामखा हँस देते हो, तो भी मेरा मन मानों फूल जाता है। और फिर तुम्हारी अुस तसवीर से मैं घंटों खेलती रहती हूँ, मैं बहुत बह गयी। मुझे क्षमा करें।

जनम जनम में तुम्हारी ही रहने की अभिलाषी,

तारा'

खौलते हुअे समुद्र में से जान बचाने के लिये कोअी ज़मीन पर आये और वहाँ आते ही भूकंप हो, अैसी ही स्थिति यह पत्र पढ़कर मेरी हो गयी।

मेरे मन की अिस अस्वस्थता ने सभी का ध्यान खींचा। तब अुस डॉक्टर ने बड़ी विजयी मुद्रा से मुझे प्रश्न किया, 'बोलो। मयसबूत के चोर पकड़ा गया न ?'

अिसपर मैं बोला, ' ये कोअी सबूत ही नहीं ! तब चोर किसे करार देंगे ? '

' याने ? '

' याने यह कि क्या अिस लड़की को लिखा गया मेरे हाथ का कोअी पत्र भी आपके पास है ? '

' तुम्हारे जैसे गुरुघंटाल भला लिखा-पढी के फेर में क्यों पड़ने लगे ! तुम्हारे जैसे लोग किसी को पत्र क्यों पठायेंगे ? वे तो रात बिरात अपनी माँ को भी गले लगाने में — '

यह सुनकर मुझे अितना ताव आया कि चाहे फाँसी ही भले क्यों न हो, अिस मनुष्य का गला दबाकर अभी प्राण ले लूँ ! प्रिन्सिपल अगर बीच न पडे होते तो अुसे मेरे हाथों का प्रसाद मिल भी जाता ।

किंतु अिस प्रकार के आक्रमण से लोग मुझे अवश्य ही अपराधी समझेंगे, यह सोचकर मैं तुरंत ही चुपचाप पीछे हट गया ।

' अशोक ! डॉक्टर कुछ जो ज़बानपर आया, सो ही नहीं बोले बल्कि हम लोगों के पास अिसका प्रमाण है । ' प्रिन्सिपल ने गंभीरता से कहा ।

' प्रमाण है ? ' मैंने पूछा ।

' हाँ हाँ, पक्का प्रमाण —' कहकर प्रिन्सिपलने डॉक्टर को कुछ अिशारा किया ।

तब मेरा ख़याल था कि अब तो चिंतोपंत मेरे खिलाफ़ गवाही देने आयेगा । परंतु जब डॉक्टर के साथ मैंने पुष्पा को आते हुअे देखा तो —

जैसे तूफ़ान और भूकंप के साथ ही कहीं बिजली भी कड़के अैसा आभास हुआ । वह बिजली न सिर्फ़ कड़की, किंतु मुझ पर गिर भी पड़ी । तब प्रिन्सिपल बोले, ' क्यों, तुम्हें प्रमाण चाहिये न ? पूछो अिस लड़की से । '

अुस समय पुष्पा मुझे पागलों की भाँति देखती हुअी थरथर काँप रही थी ।

' चलिये ! शीघ्र पूछिये जो पूछना है अिससे । अिसे यदि अिसी बीच कहीं मूर्च्छा आ गयी तो मैना देवी मुझ से जवाब तलब् करेगी । क्यों कि मैं अुन का फैमिली डॉक्टर जो ठहरा । ' डॉक्टर बोले ।

तब तुरंत पल भर में ही सारी बात मेरी समझ में आ गयी। चिंतोपंत ने तारा का पत्र पहले ही पैदा कर रखा होगा। मैना देवी के साथ मठ में जा जा कर लुंगी बाबा से अुसने खूब जोड़तोड़ भिडा लिया था। माँ को भी अुसने वहाँ देखा ही था। वक्त आने पर तारा का पत्र दिखा कर अुसने पुष्पा का मन भी कलुषित किया। अुस वक्त काफ़ी रात बीते, जब पुष्पा मुझ से सफाअी माँगने आयी तो वह अकल्पित दृश्य दिखा तब पुष्पा के साथ आये हुअे चिंतोपंत को वहाँ माँ नज़र पडते ही वह मठ में पहुँचा और वहाँ लुंगी बाबा की मरहम-पट्टी को आये डॉक्टर से भी अुस की भेंट हो गयी। तब फजीते के कारण बाबा पानी की तरह पैसा भी बहाने को तैयार हो गया होगा और अुसे डॉक्टर और चिंतोपंत जैसे मददगार भी मिल गये।

'वृषभ' पत्र के भूतपूर्व संपादक का अपनी रसोअीवाली महाराजिन के पूर्व प्रकरण के कारण मुझ पर दाँत था ही। बुवाबाजी पर मेरे लेखों से बाकी के स्थानीय संपादक भी चिढ़े बैठे ही थे। तब पापी पेट के लिये जो चाहें सो छापने वाले अिन टुकड़खोर अख़बारों ने अेक रात में ही मुझे नामीगरामी गुंडा करार दे दिया।

साँकर की सभी कड़ियाँ मिल गयी थीं। पर अब हो भी क्या सकता था ? अिसी साँकरकी बनी बेड़ी मेरे हाथ-पाँवों में पड़ने वाली थी, यह खुले खज़ाने नज़र आ रहा था। अिसे मुक्ति का बस अब अेक ही मार्ग था और वह थो पुष्पा ! अतः —

'पुष्पा —' मैंने अुसे पुकारा।

दूसरी ओर देखती हुअी ही वह बोली, 'तुम ने मुझे फँसाया, अुस तारा को भी फँसाया, अब और कितनी औरतों का गला काटोगे ? और रात बिरात माँ भी अपने लड़के को गले लगाती है, क्यों न ?'

अुस समय वह मनःसंताप से पागल हो गयी थी, अीर्ष्यासे अंधी हो गयी थी। किंतु पागलोंकी बातका कभी कोअी बुरा मानता है क्या ? अंधेके टकरा जाने पर कभी कोअी अुसपर बिगड़ता है क्या ?

वह सिसकती हुअी फिर बोली, 'अशोक ! आख़िर तुम्हें ये हो क्या गया है ? तुम अपना गौरव भूल गये, अपनी पुष्पा को भी भूल गये ?'

अितने लोगों के सामने सिसकने से लजाकर वह तेज़ी से वहाँसे चली गयी। अुस के अिन अुद्गारों में मेरे बारे में अुस का स्नेह ही अधिक था। पर वहाँ बैठे हुअे लोगों को अुस का अैसा करना मेरे खिलाफ़ पक्का प्रमाण ही लगा। क्यों कि किसी की लाश की चीरफाड करने को ही वे वहाँ अेकत्र हुअे थे। जीवित जाग्रत मनुष्य की भावनाओं का अैसे समय अुन्हें भला कैसे स्मरण हो सकता था?

अंत में प्रिन्सिपल मेरी ओर देखकर बोले, 'बोलो! अब —?'

अुन का वाक्य पूरा करते हुअे मैंने कहा, 'अब, बस अेक ही मार्ग शेष है! और वह मुझे भली भाँति मालूम भी है।'

राजीनामा लिखते लिखते मैंने प्रिन्सिपल की तरफ़ देखा तो वे आँखों की कोर पोंछ रहे थे। तब मुझे अुनपर तरस आया कि आखिर मिथ्या सात्त्विक आसक्ति का अितना महान् मनुष्य भी कितना दास है! चाहे कुछ भी हो पर संस्था चलती रहे अिसकी चिंता से बेचैन थे, अुन की न्यायबुद्धि धृतराष्ट्र बन गयी थी।

अंत में अुन के हाथ में राजीनामा देकर मैंने सबसे कहा, 'मित्रो! आप सबने सत्य की खोज़ की, किंतु सत्य चर्मचक्षुओं से नहीं नज़र आता। वह तो सच्चे हृदय के मनुष्य के मन की दिव्यता को ही दीखता है। मानवता को कुचलकर जीने के बजाय, मानवता की रक्षा करते करते मृत्यु का आलिंगन ही मेरे मत में श्रेयस्कर है। अच्छा सज्जनो, प्रणाम।'

अुस कमरे से बाहर निकलकर मैं जीना अुतरने लगा तो कुछ अूपर से गिरा-सा मालूम हुआ। मैंने मुड़कर जा देखा तो वह पुष्पा के केशकलाप में लगा गुलाब का फूल था। सीढ़ी पर गिरते ही अुसकी पँखुरी पँखुरी बिखर गयी। मेरे मुड़कर देखते ही अुसने मुँह मोड़ लिया। परंतु अेकदम अंतिम सीढ़ी पर मुझे अुस का सिसकना सुनाई दे ही गया।

घर जाते हुअे मार्ग में प्रभाकर भी मिल गया। अुसे पिताजीने घर से निकाल दिया था। मैं अुसे साथ लिये हुअे घर पहुँचा तो माँ चंदू को गरम आंबा-हलदी का लेप लगाती नज़र आयी। मैंने पूछा —

'ये क्या हो गया रे?'

'कुछ नहीं साहब, यों ही गिर गया!'

यह सुन कर माँ हँसी तो मैं समझ गया यह झूठ बोल रहा है। वह बाहर गया तब माँ ने सारा किस्सा सुनाया कि अुसे साग लेने भेजा था। वहाँ अेक हाकर ज़ोर ज़ोर से आवाज़ लगा कर आज का अख़बार बेच रहा था। चंदूने मना किया। वह न माना। तब दोनों लड़ पड़े। चंदू का कहना था कि अभी अख़बारवाले अुसके मालिक के पैर धो कर पीयें। हाकर का कहना था कि जब छपी है, तो बात सच ही होगी और अख़बार अगर आवाज़ लगा कर न बेचा जाय तो पेट कैसे भरे ?

और प्रभाकर को साथ देखकर माँ बोली, 'देखा ! संकट पर संकट कैसे आता है ?'

मैं बोला, 'नहीं नहीं। सुख के बाद सुख अैसे ही आता है। मुझे सिर्फ़ अभी अेक ही बात खल रही है, अुसके बिना सुख अधूरा है। अभी प्रेमा को जो पिताजीने रख छोड़ा है !'

● ● ●

१३

सुशीला

वे मेरे अूपर अितने नाराज़ हैं कि प्रभाकर को घर से निकाल दिया। परंतु प्रेमा को ज़रूर अुन्हों ने पास रख छोड़ा है। सचमुच वे अुसे बहुत प्यार करते हैं। तो अुन्हों ने अिस अुम्र में जो शादी की वह सिर्फ़ संतान की कामना से ही तो नहीं न? मनुष्य की कामना कभी कम नहीं होती, क्यों कि वह मन की भूख़ जो है। खेल कूद की, विद्या की, जीवनसाथी की, संतान की, किसी न किसी वस्तु की भूख़ जिसे न हो, अैसा संसार में कोअी नहीं। हाँ, आयुष्य के अनुसार अुस भूख़ के रूप अवश्य बदल जाते हैं।

अुन की वात्सल्य की भूख प्रेमा थोड़ी तो अवश्य शांत करेगी ही। पर अशोक के प्रेम की भूख? चंदूने सब कुछ मुझे भली भाँति बता दिया है। अुस दिन रात को चिंतोपंत और मैना देवी के साथ जो लड़की आयी थी। तो अशोक के सामने सजे पाँच पकवानों के थाल में, अनजाने ही मेरे हाथों कहीं जहर तो नहीं मिल गया न! क्यों कि अुस दिन से वह अेक बार भी यहाँ फिर नहीं आयी।

अिस अेक बात से ही क्या? क्या, अुसकी नौकरी भी मेरे ही कारण नहीं चली गयी? किंतु अुसने तो सभी बातें मुझ से छिपाअी, परंतु

आखिर प्रभाकर ने मुझे सभी कुछ बता ही दिया। मेरे ही कारण आज सारे गाँव में अुस की बदनामी भी हुअी। अुस की नौकरी छूट गयी तो भी 'माँ माँ' कह कर मेरा कितना मान रखता है। मैंने जब कहा, 'मेरे गहने बेच डाल', तो 'ये तेरे नहीं, तेरी बहू के हैं' कह कर अुसने मेरा मुँह बंद कर दिया। प्रत्येक मास का बाकी बचा वेतन भी तो वह आश्रम को दे देता था। अतः आज अुसके पास पचास रुपये भी शेष नहीं। 'अब कैसे काम चलेगा?' यह पूछा तो बोला, 'माँ! तेरे घर में तो चार ही जीव मात्र हैं, परंतु सारे जगत् में तो दो सौ कोटि मनुष्य हैं।'

मैं मन में दुख न मानूँ, अतः वह सानंद होने का दिखावा करता है! क्या, यह मुझे मालूम नहीं? चंदू के हाथों पुस्तकें बिकवाअीं और पैसे मेरे हाथ में देकर बोला, 'माँ! ये घर पढ़ाने के पैसे हैं!' अशोक, अरे, झूठ बोलना कहाँ से सीख गया। तभी तुझे छोड़कर कहीं जाने का मेरे मन नहीं होता।

और अशोक को छोड़कर आखिर जाअूँगी कहाँ? अुस के वे शब्द लगातार मेरे कानों और मन में गूँज रहे हैं। 'तू प्रेमा की बहन नहीं, अशोक की माँ नहीं, पिताजी की पत्नी नहीं, आज से तू मनुष्य है, केवल मनुष्य!' यह वाक्य जब मेरे तन मन प्राण में गूँजता है, तो अेक नयी ही दुनिया मेरी आँखों के सामने खड़ी हो जाती है। यद्यपि स्पष्ट तो कुछ भी नहीं दीखता, परंतु लगता है अुस जगत में मनुष्य को अपनी कोअी भी भूख मारनी नहीं पडती।

साथ ही दादी की वह बात भी याद आयी कि 'घर ही स्त्री का संसार है'। अगर दादी आज होती तो —

मन कैसा कैंची के बीच फँसा-सा लगता है। दो पहर को प्रभाकर कॉलेज जाता है, अशोक नौकरी की खोज में, सिर्फ मैं अकेली ही घर में रहती हूँ। अकेले आदमी को तो अँधेरे में ही डर लगता है, किंतु मुझे भरे दिन में भी अपने विचारों का भय लगता है। अैसे समय चंदू किसी देवर्षि से भेंट कर के आता है, और खुशी से कहता है, 'माँ जी, देखो! आठ दिन के अंदर अवश्य ही साहब को नयी नौकरी मिल जायगी। यदि न मिली तो अुस ज्योतिषी ने मेरी चवन्नी मुझे वापिस देने को कहा है।'

अज्ञान में भी आखिर कितना आनंद है !

प्रेमा की भी लगातार याद आती है। वे घर में न हों तब, अुसे चुपचाप देख आने का बहुत मन हुआ, परंतु वे अुसे साथ लेकर ही तो बाहर जाते होंगे न ? फिर —

अेक दिन मैं अुस की स्कूल के सामने से निकली। तो वहाँ पैर जैसे जम ही गये। परंतु मदरसे में जाकर अुसे देख लेने का साहस मैंने नहीं किया। क्यों कि सोचा यदि किसी ने अुन से यह बात कह दी तो छोकरी जो आज सुख में है, कल —

परंतु जब वह ही मुझे मिलने आयी तो मुझे आश्चर्य ही हुआ। मैंने पूछा, ' अकेली ही आयी है क्या ? '

' अुँ, हुँ। '

' तो किसके साथ आयी है ? '

' पिताजी के। '

' वे कहाँ हैं ? ' यकायक मेरी छाती धड़कने लगी।

' बगीचे में बैठे हैं। '

तब अुन के प्रेमा पर वात्सल्य का कौतुक करें या अशोक से नाराज़ी कलक करें ? कुछ समझ में नहीं आता था।

प्रेमा बिचारी बालक जो ठहरी ! क्या हो गया, यह अुस की कुछ समझ में न आता था। अुस की नज़रों में पिताजी भी अच्छे, जीजी भी अच्छी, अशोक भैया भी अच्छे, तब पिताजी ने, ' अशोक के घर पैर न देंगे, जीजी का मुँह भी न देखेंगे ' जो कहा, अुसे वह कैसे समझे ? मदरसे में दो तीन बड़ी लड़कियों ने कहा कि ' तेरी जीजी भाग गयी ' तो अुस ने सहजभाव से जवाब दिया, ' झूठ ! वह तो यहीं अशोक भैया के घर है ! '

अुस का यह अुत्तर सुन कर वे लड़कियाँ खी खी करके क्यों हँसीं ? यह भी कुछ अुस की समझ में न आया।

और अपना यह दर्द मेरी गोदी में मुँह छिपा कर बताते हुअे लगातार अुस की आँखों से पानी बह रहा था। तब मैंने अुसे खुश करने के लिये अुस का मनपसंद गीत अुसे सुनाया —

धांव पाव नंदलाल बोल गोड बोला*
अंतरिंचा हा छकुल्या शांतवी अुन्हाळा

तब हँसती वह विदा हुअी। मेरे मन में आशा का अेक अंकुर अुत्पन्न हो गया कि आज अगर वे बाग़ तक आये हैं तो कल घर तक भी अवश्य आयेंगे। और दरवाज़े में आते ही मैं अुन के पैर पकड़ लूँगी। सब कुछ भली भाँति अुन्हें बताअूँगी। अशोक के लिये अुन के आगे आँचल फैलाअूँगी। कुछ भी करूँगी, पर अपने घर को यों बिगड़ने न दूँगी।

मनुष्य जो अेक दूसरे से खुले दिल से बातें करते हों तो — दूसरों के दुख को अपना समझने जितने अुदार मन के होते तो — मुश्किल है। मनुष्य पैसे लुटा सकता है, प्यार के लिये जान भी बिछा सकता है, किंतु अपनी भूल कभी कबूल नहीं कर सकता। अपने को दूसरे की दृष्टि से कभी नहीं देख सकता।

मैं सोच रही थी कि शाम को अशोक घर आयेगा तो अुस से कहूँगी कि आज यहाँ प्रेमा आयी थी, और तब हम सब मिल कर खूब खुश होंगे। पर वह आया तब अकेला नहीं था, अुस के साथ वह मुर्दार चिंतोपंत भी था। अशोक तो अुसे दरवाज़े से ही टाल देना चाहता था, पर वह ठहरा पक्का चिप्पु! स्वयं ही अंदर आ कर कुर्सी पर बैठ गया। अुन दोनों की बातें मुझे भली भाँति अंदर सुनाअी देती थीं।

चिंतोपंत बोला, 'आपने नाहक ही आश्रम से त्याग-पत्र दिया। लडकियाँ आपको बहुत याद करती हैं। आपके आश्रम छोड़ने से वह तारा भी निकल गयी।'

अशोक ने कहा, 'चिंतोपंत! नगर की नज़रों में अशोक अनीतिमान है, अतः आप जैसे सभ्य मनुष्य अुस के घर जाते हैं, यह लोगों को पता चला तो —'

---

* धाव पाँहि नंदलाल मधुर बोल बोलो,
मन की ये जलन हरो, अमृतरस घोलो।

‘ अजी, अिसमें क्या रखा है ? मैं कह दूँगा कि मैं आश्रम के लिये चंदा लेने गया था । अच्छा, जाने भी दो अिन बातों को । किंतु देखो, अशोक ! आप दुनियादार क़तअी नहीं । देखिये, यह जो आपकी माँ या कौन देवीजी हैं, अुन्हें अपने घर के बजाय किसी दूसरी जगह रख दीजिये । फिर देखिये आपको कोअी कुछ पूछेगा तक नहीं । आप पुनः प्रोफेसर भी बन जायेंगे, पुनः अबलाश्रम के मंत्री भी बन जायेंगे । और तो क्या, वह पुष्पा भी पुनः — जगत् यह कभी नहीं कहता कि पाप मत करो, परंतु अुसका केवल अितना ही कहना है, कि जो कुछ करो, गुपचुप करो । ’

तब तो अशोक ने अुस को सीधा दरवाज़ा दिखा दिया ।

● ● ●

१४

अ शो क

'पाप करो तो गुपचुप करो'! कितना निर्लज्ज है यह चितोपंत। परंतु अुसने जो कहा वह झूठा था क्या? समाज को कटु सत्य नहीं चाहिये। शक्कर-सा सत्याभास चाहिये, नीति नहीं। नैतिकता का कोरा प्रदर्शन चाहिये। क्यों कि सत्य और नीति का सच्चा स्वरूप तो सुखी दुखी किसी को भी नहीं दीखता। जलनेवाले मन के आलोक में ही —

नैतिकता का खून! लोग कहते हैं अशोक ने नीति का खून कर दिया। तो क्या, मानव-धर्म का पालन ही नैतिकता का खून है? सच है। सफ़ेद को काला करके चाहे जिसका मुँह काला करने वाले अखबार नीति का खून नहीं करते। ढोंगी बाबाओं के पीछे दौड़कर समाज को भी अुन का गुलाम बनाने वाले पढ़े-लिखे लोग भी नीति का खून नहीं करते। जिस समाज में हजारों स्त्रियाँ अपना शील बेचे बगैर जी ही न सके अुसे चलने देने वाले भी नीति का खून नहीं करते। ग़रीबों को चूसकर अुन की खून की मादक मदिरा आँखें मूँदकर गलाटा जाने वाले पूँजीपति भी नीति का खून नहीं करते। तो क्या, भूत-प्रेतों को भगवान समझकर पूजने वाले समाज का जो विरोध करते हैं, वे नीति का खून करते है!

मैंने खून तो अवश्य किया, पर वह असत्य का, अनीति का, मानवता की कीमत न आँकने वाले अज्ञान का खून था। क्यों कि मनुष्य न पत्थर की प्रतिमा ही है न निसर्ग की सीमा में बद्ध पशु ही। वह न दीखने वाले देव, मदोन्मत्त बना देने वाली मोहक लक्ष्मी, अुपदेश में सरल पर आचरण में निर्जीव कठिन तत्त्व 'दर्शन' को, अपने सपनों की सृष्टि को मोहमंडित बनाने वाले कोअी महात्मा, पंडित, पुस्तक किसी का भी गुलाम नहीं है। जो समाज अैसी गुलामी की पीठ ठोकता है —

राजीनामा दे कर जब से घर आया हूँ, तब से मेरे मस्तिष्क में अैसे विचारों के न जाने कितने ज्वालामुखी भड़क अुठे थे, अुनकी गिनती कठिन है! शांत समुद्र में अुठने वाली लहरें और तूफ़ानी समुद्र में अुठने वाली लहरें अिन दोनों में जितना अंतर है, अुतना ही पहले और आज के अशोक में था। रात हुअी कि मेरे विचारों का तूफ़ान और भी ज़ोर पकड़ता। रसोअी-घर का कामधाम पूरा करके मैं अभी सोया या नहीं, यह देखने के लिये माँ अेक बार मेरे बिछौने के पास चक्कर ज़रूर लगा जाती। अुस की पदचाप सुनाअी देते ही मैं आँखें मीच कर अेक बार सोने का स्वाँग अवश्य करता था। तब वह संतोष की साँस लेकर लौट जाती। मैं मन में सोचता कि यदि और कोअी काम न भी मिले तो अभिनेता होने में तो हर्ज़ ही क्या है? सबेरे ही अेक मीठी भूपाली गुनगुनाती हुअी माँ घर के कामकाज में लग जाती। बीच में ही मैं अभी जगा या नहीं, यह भी वह देख जाती। मेरे मुँह पर ओढ़ना होने से वह समझती कि अशोक अभी गहरी नींद में सोया है, अुस के गले से और भी मधुर स्वर निकलते।

दर असल मैं माँ को छलता था। अुसे सच बात बताने से भी क्या लाभ होता? योद्धा कभी अपने जख्मों का गीत गाता नहीं बैठता। और मेरे अिन जख्मों से बहने वाले रुधिर की अपेक्षा लाखों लोगों की आँखों से बहने वाले आँसुओं का महत्त्व अधिक नहीं है क्या?

और वह तारा — किसी की आवाज़ में मिठास न हो तो भी वह स्वयं ही नहीं गुनगुनाता रहता है क्या? तारा के प्रेम-पत्र भी अैसे ही थे। परंतु अुसे किसी ने भी सहानुभूति से नहीं देखा। अुस की जैसी

जवान लड़कियों का मन अितना क्यों तड़पता है, यह देखने को कोअी भी माँ का लाल तैयार नहीं हुआ। अिन नीति के रक्षकों ने मेरे हटते ही दूसरे या तीसरे दिन ही अुसे आश्रम से निकाल बाहर किया। बिचारी कहाँ भटकती होगी, कौन जाने! और अुस मैना देवी के बारे में मुँह खोलने की भी किसी की छाती नहीं। आज का समाज कितना ढोंगी हो गया है। अुसे पुलिसों से हाथ मिलाने वाले चोर चल सकते हैं, पुलिसों को हाथ बताने वाले चोरों को भी निभा सकता है, किंतु महज चोरी की अिच्छा करके चोरी न करने वाले ग़रीबों को कभी यह समाज बर्दाश्त नहीं कर सकता।

अुस लुंगी बाबा को लगे ज़ख्मों की ख़बर अख़बार रोज़ छापते थे। पर बिचारे चंदू के हाथ में होनेवाला ज़ख्म – अुसकी कौन परवाह करे? हैं दोनों ज़ख्म ही – पर ——

वैसे चंदू अुस बाबा से, और मुझे अनीतिमाम करार देने वाले अिन सुशिक्षितों से कहीं सौ गुना श्रेष्ठ है। क्यों कि अुस का कलेजा अुन की तरह न तो काला है न कमज़ोर ही। कल जब मैं अुसे अिस मास का वेतन सात रुपये देने लगा तो कहता क्या है, 'साहब, मेरे पास पैसे हैं।' भला कहाँ से आये अुस के पास पैसे? किंतु अुस के अिन पाँच शब्दों से मेरे सामने अेक बार स्वर्ग ही अुतर आया।

चंदू की भाँति ही अुन छात्रों के प्रेम से भी मेरा हृदय भर आया। दिन में आने के संकोच के कारण रात को आ आ कर मिल जाने वाले ये लड़के और आपस में चंदा करके लाये हुअे अुन के वे पचास रुपये मेरे लिये 'नोबेल प्राअिज़' से भी बढ़कर हैं। क्यों कि अुनमें से प्रत्येक रुपये के पीछे अुन का निःस्वार्थी प्रेम है, थोड़ा ही क्यों न हो त्याग भी है। कोअी सिनेमा न गया होगा, तो किसी ने कोअी चाही चीज़ न खायी होगी, किसी ने कोअी मन की चीज़ न खरीदी होगी। और वह ग़रीब विद्यार्थी। अुसने तो दो दिन अुपवास करके आठ आने दिये थे। अतः वे रुपये मुझे वापिस करने तो अशक्य हो गये, किंतु मैं अुन्हें खर्च भी न करूँगा। क्यों कि वे महज़ रुपये नहीं, अुनके मूर्तिमान हृदय हैं। मुझे सदैव स्फूर्तिदात्री मूर्ति हैं।

मिलने आने वाला प्रत्येक विद्यार्थी मुझ से हस्ताक्षर और संदेश ले गया। परंतु अुन को मैं 'मानव का धर्म मानवता है' अिस अेक वाक्य के सिवा कुछ न लिख सका।

बम्बअी जैसे बड़े नगर में जाकर मैं आसानी से पेट भर सकूँगा। पर मैं चला गया तो अुसका अुलटा ही अर्थ लगाया जायगा कि मैं अिस लड़ाअी से भाग खड़ा हुआ। और यों मैंने अपना अपराध मुँह से नहीं तो, कार्य से कबूल कर लिया, अैसा समझा जायगा। अतः चाहे कितनी भी दुर्दशा क्यों न हो, मैं यहीं रहकर अिस ढोंगी समाज से लड़कर अुसपर विजय प्राप्त करूँगा। जिस माँ को आज अिस समाज ने कुलटा करार दिया है, अुसे सती साबित करके मानूँगा। मेरा यह निश्चय सुनकर माँ का मन न जाने कैसा हो जाता है! वह कहती है, मनुष्य को विष की परीक्षा से कोअी लाभ नहीं होता; पर मैं मानता हूँ कि यदि अिस विष का अमृत बनाने में मौत भी आ जाय तो परवाह नहीं। परंतु —

यह काम कुछ सरल नहीं। मनुष्य चाहे बंदर का वंशज हो न हो! किंतु अुस का कौआ और गिद्ध से कोअी न कोअी नज़दीकी रिश्ता ज़रूर है। अुस दिन अुस पेन्शनर सब्-जज ने मुझे अपनी लड़की के ट्यूशन के लिये घर बुलाया था, लेकिन वहाँ जाने पर कहता क्या है? 'देखिये महाशय! यों तो हमें आपके प्रति आदर है, पर मेरी लड़की आपसे पढ़ेगी तो आप दोनों अेकांत में अेक साथ बैठेंगे ही। और आपके बारे में आजकल गाँव में अफ़वाह गर्म है कि आपका अपनी सौतेली माँ से — अब आप ही बताअिये कि मैं क्या करूँ?'

मेरे मन में तो आया कि यदि अिस के घर न आया होता तो अेक ही चाँटे में अिस के सारे नक़ली दाँत झाड़ देता।

और वैसा ही वह हेड-मास्टर भी निकला। प्रोफ़ेसरी करने वाला आदमी मेरे हाथ के नीचे काम करेगा! प्रथम तो अुसे अिस बात का अभिमान हुआ। पर जख्मों पर नमक छिड़क कर वह तुरंत ही बोला कि, 'आप मास्टर तो सानंद हो सकते हैं, परंतु हमें स्कूल के आसपास अनाथ लड़कों का आश्रम नहीं खोलना!'

किसी दिन यदि घर से न निकलता तो माँ समझती कि मैंने नौकरी की आशा छोड़ दी। अिससे अुस का जी दुखता। अतः अुस के मन के संतोष के लिये ही मैं प्रति दिन दो पहर को घर से बाहर तो निकल ही जाता। समाज के सभ्य लोगों के दरवाज़े तो मुझे देखते ही बंद हो जाते थे। अिसका तो मुझे काफ़ी कटु अनुभव हो चुका था, अतः मैं अुस पहाड़ी पर घंटों ही किसी वृक्ष की छाया में बैठ कर प्रति दिन वक्त बिताता था।

आतप की ओर देखते देखते मेरे भावी जीवन के अनेक चित्र मेरी आँखों के सामने नाचने लगते थे। गाँव के किसानों में हिलमिल जानेवाला अशोक, मिल के मज़दूरों का मित्र अशोक, क्लर्क से लेकर कुली तक सभी से 'आदमी अिस दुनिया में नाक रगड़ने के लिये नहीं, लड़ने के लिये आया है' यह कह कर धीरज बँधाता अशोक — कितने नये नये अशोक मुझे नज़र आने लगे।

प्रत्येक नये अशोक के पीछे पुरुषों की तरह स्त्रियों की भी काफ़ी भीड़ नज़र आती। और हरेक के हाथ पैरों के बंधन काट कर वह कहता नज़र आता, 'माँ, यह सारा संसार तेरा है, तू स्वतंत्र है।'

अुस दिन अुस टेकड़ी पर मैं यह दिवा स्वप्न देखता बैठा था कि आकाश में अेकदम घोर अँधेरा छा गया। पर मेरे मन में पूर्ण प्रकाश था। तब मैंने अपनी आँखों के सामने तरंगित चित्रों में से अेक लड़की के पैरों की बेड़ी काटकर कहा, 'माँ!—'

कि यकायक मेरे माथे पर टप् टप् आँसू पड़े। सर अुठा कर देखा तो — पुष्पा थी वह!

कल्पनाचित्र की जगह अब सच्चे चित्रों ने ले ली थी। क्या, मैं पुष्पा को सचमुच बिल्कुल ही भूल गया था? लेकिन प्रीति तो कभी भुलक्कड़ नहीं होती! घर जब कुछ लिखने के लिये बैठता तो बीच ही में कभी कभी पास में पड़े कागज़ों पर व्यर्थ ही 'पुष्पा' 'पुष्पा' लिख मारने की जिस के हाथों को टेव पड़ गयी हो अुस का मन भला क्या —

मगर अिस बीच वह मेरे पास नहीं आयी, अतः मैं भी अुस के यहाँ नहीं गया था। अहंकार की दृष्टि से चाहे यह ठीक हो, लेकिन अहंकार को जीत ले, वही तो सच्चा प्रेम है न?

पुष्पा से क्षमा माँगने के लिये न सही, अुस के प्रेम की भीख माँगने के लिये भी न सही, मगर अुस ने जो भूल की, वह फिर न करे अिस के लिये भी क्या अशोक को अुस से नहीं मिलना चाहिये था?

मेरे सामने घोर अँधेरा था, संध्या से पहले ही अँधेरे का आभास होता था, और मानों बीच बीच में चमकने वाली याद की बिजली ने तो अुसे और भी भयानक बना दिया था।

मैं पुष्पा से आखिरी भेंट के लिये टेकड़ी से उतरने लगा।

पुष्पा और मैं अनेक बार साथ साथ दौड़ते हुअे यहाँसे नीचे उतरे थे।

वे याद की तस्वीरें! वे स्मृतिचित्र —

● ● ●

१५

पुष्पा

मोहपाशीं गुंतसी कां मम जीवा ?
  विसरुनि जा ना,
  विसरुनि जा !
  मोही काय माया ?
  मृगजल प्याया
  शिणविसि काया,
  वणवण वाया !
  विसरुनि जा !

ममतामें मगन क्यों मेरे मन ?
  जो बिसर सके तो —
    बिसरा दे ।
  मोहे क्यों माया ?
  मृगजल माया,
  कातर काया,
  मन बिरमाया !
  बिसर सके तो—
    बिसरा दे ।

आजकल अिसके सिवा फोनोग्राफ़ पर दूसरी चूड़ी चढ़ाने का मन ही नहीं होता। अुस दिन के पहले

'डोळे हे जुल्मि गडे'*

मुझे बहुत मीठा लगता था! पर अब? —

'विसरुनि जा ना, विसरुनि जा'

ये कवि लोग वैसे चाहे बड़े बुद्धिमान् हों, पर अिन के हृदय तो नहीं मालूम होता। कहते हैं 'विसरुनि जा ना, विसरुनि जा'। अरे बाबा, 'अपने' को बिसर जाना अितना आसान है क्या? दिन बीते, सप्ताह बीते, आज महीना भी हो गया। पर अशोक को मैं पल भर भी नहीं भूल पाती। अुलटे भुलाने की कोशिश करने पर अुन की और अधिक ही याद आती है।

और वह मेरी क्लास की शोभना अब मुझे कितना चिढ़ाती है। वह भी अशोक को प्रेम करती थी, पर मैं बीच में आ गयी। अतः वह मन ही मन मुझ से जलती थी, और अब अुस के मन की-सी ही हो गयी। कितने छोटे मन की है शोभना!

लेकिन मेरा मन भी कौन-सा उदार है? यदि वह उदार होता तो अुस रात का वह प्रसंग देखने पर भी, अशोक अपने हैं यह कभी न भूलता। बच्चे को सीतला निकलने पर भी क्या माँ अुस से दूर रहती है? तो अशोक का अिस प्रकार अधःपात होने पर मुझे आगे आ कर अुन्हें सँभालना नहीं चाहिये था क्या? 'माँ' अुपन्यास की माँ अपने बच्चों के लिये बड़े बड़े काम करती है, तो क्या, मैं अितना भी न कर पाती?

अशोक का अधःपात! तारा का वह पत्र और अुस रात को अुनके घर का वह विचित्र दृश्य। मेरा मन भड़का हुआ पाकर अिस चिंतोपंत ने अुस बात का भरपूर लाभ अुठाया। अशोक को आदमियों के बीच से अुठाने में ही कारण बनी। अपने पूजने की मूर्ति के मैंने स्वयं ही क्रोध में आकर टुकड़े टुकड़े कर डाले।

* 'ये ज़ुल्मी नैना'— अिस अर्थ का अेक मराठी रिकॉर्ड।

जगत् में लंपट पुरुष बहुत-से होंगे। किंतु मेरे अशोक भी यदि वैसे ही होते तो पिछले साल भर में क्या कभी भी वे मेरे अेकांत का लाभ न लेते? वे अधिक छूट से क्यों नहीं बर्ताव करते, जिसके लिये पुष्पा अुन पर मन ही मन नाराज़ भी थी। और अुसी पुष्पा ने अुन्हें क्रोध में अंधी होकर लंपट और अनीतिमान करार दिया! हाय दैव —

अब गाँव में अुन्हें कोअी ट्यूशन तक नहीं देता। हर आदमी अुन्हें बहुत खतरनाक मानता है। यह बतलाते हुअे चिंतोपंत को कैसी गुदगुदी होती है, पर मैं घुटमरने जैसी हो जाती हूँ! अपनी मौसी की नैतिकता का फरफराता झंडा क्या मुझे नज़र नहीं आता? किंतु अुस का अन्न खाकर अुस के घर की छाया में ही अितने दिन मैंने कैसे व्यतीत किये। और चार आदमियों के बीच में मौसी की आँखों देखी लीलाअें मैं कह सकूँगी क्या? लेकिन अशोक को फाँसी पर चढ़ाने को तत्पर लोगों की मैंने मदद की। वैसे वे मुझे मौसी से भी कितने नज़दीक मालूम होते थे। पर —

अशोक पर मेरा अकेली का ही हक़ है अिस खयाल से मैं पागल हो गयी थी। अेक बात मैं शायद बिल्कुल भूल गयी कि प्रत्येक व्यक्ति पर जगत् का कुछ न कुछ हक़ अवश्य है। वे मुझसे प्रेम करते, अिसी लिये क्या तारा जैसी किसी अनाथ लड़की पर दया भी न करते? या अपनी दुःखी माँ से भी ममता का व्यवहार न करते? अिस प्रकार की ज़िद भी मेरा अेक पागलपन ही था। कल तो वे सारे संसार से प्रेम करेंगे! तो प्रणयिनी को अपने वल्लभ के अिस पराक्रम पर गर्व करना चाहिये। न कि ओछे मन से द्वेष —

तो क्या, तारा और सौतेली माँ के प्रति अुनका प्रेम सर्वथा पवित्र है?

अशोक ने जिस दिन राजीनामा दिया, अुसी दिन मैं आश्रम में तारा के पास गयी थी। तब कितनी सरलता से अुसने सारी बातें बता दी थीं कि – 'मैं तो अुस देवता पर सिर्फ़ पुष्प चढ़ाती हूँ, अुस की देवी तो कोअी और ही है।' अुसने केवल अपने मनस्तोष के लिखे हुअे सारे पत्र भी मेरे सामने ही जला दिये थे। क्यों कि अुनमें से अेक भी पत्र अुसने कभी अशोक को भेजा न था।

अितनी सफ़ाअी हो जानेपर भी सौतेली माँ का संशय लेकर मैं अुन से दूर ही रही। पर अुन का अुस पर प्रेम पवित्र होगा क्या? न भी हो तो क्या हुआ? मेरे अशोक चंद्र नहीं हैं, वे तो सूर्य हैं। यह बात मैं ही तो कहती थी न?

सूर्य! मैंने खिड़की से बाहर देखा तो सूर्य कहीं नज़र नहीं आ रहा था। घोर अँधेरा छा गया था। देखते देखते रिमझिम पानी बरसने लगा, बादल गरजने लगे, बिजली कड़कने लगी। मूसलधार बरसात गिरने लगी। अशोक को कभी अवश्य मिलना चाहिये, अिसका मैं विचार ही कर रही थी कि बाहर की बरसात को देखकर मेरे मन में 'मृच्छकटिक' नाटक की याद आ गयी। अुसमें अिसी प्रकार बरसात में वसंतसेना चारुदत्त से मिलने जाती है। तो मैं भी —

किंतु यह क्या? रास्ते पर मेरी नज़र पड़ी तो अशोक आ रहे थे, और वह भी हमारे ही बँगले की ओर रुख करके! सर पर छाता न था, कपड़े पानी से तरबतर हो गये थे।

पलभर तो मुझे यही न सूझ पड़ा कि क्या करूँ! अशोक भीगते हुअे आ रहे थे, अतः मैं छाता लेकर दौड़ती हुअी फाटक पर आयी। मेरी छाती धड़कने लगी। बाहर दो व्यक्ति बात कर रहे थे। पानी बंद हो गया था, अतः बातचीत साफ़साफ़ सुनाअी दे रही थी। मैंने मात्र अेक बार अुचक कर देखा और मैं ओट में खड़ी हो गयी; क्यों कि वे अपनी माँ से बातें कर रहे थे। वे भी पानी से तरबतर हो गयी थीं।

अशोक ने उनसे पूछा, 'मेरी यहाँ आने की बात तुझे किसने कही?'

'टेबिल पर के कागज़ों ने। क्यों कि सारे कागज़ 'पुष्पा' अिस अेक नाम से ही भरे पड़े थे।'

तब आकाश की ओर देखते हुअे वे बोले, 'माँ! मनुष्य से तो ये बरसात अच्छी, ये अँधेरा भी करती है तो कितनी थोड़ी-सी देर! और आदमी जो संशय से अंधा बन जाता है तो सदैव के लिये। क्यों, माँ! मेरे जीवन का आकाश भी कभी यों ही साफ़ हो जायगा क्या?' अिस वक्त मेरे लिये – पुष्पा के लिये ही – अशोक तड़प रहे थे, जिस क्षण की मैं साल भर से बाट देख रही थी —

अिस पर माँ बोलीं कि 'तेरे जीवन के आकाश में केवल अुजाला ही न होगा किंतु अुस में सुंदर चाँदनी भी चमकेगी !'

अेक ही वाक्य — किंतु कितना मीठा ! अुसकी चाँदनी ने मेरे मन का रहा-सहा अँधेरा भी पलभर में खो दिया ।

तब माँ अुन से बोलीं कि 'चल बाबा, घर चल, नहीं तो अिस ठंड से कुछ और हो गया तो —'

अिस पर वे बोले, 'माँ ! पुष्पा से मुझे अेक बार मिलना है, क्यों कि वो बड़ी अल्हड़ है, मुझे अुस से सिर्फ अेक ही बात कहनी है कि सच्चा प्रेम अीर्ष्यालु हो सकता है, परंतु वह डरपोक नहीं होता । अपने अधिकार के आदमी का अगर कोअी अपहरण करने लगे तो अुसे यों रोतेधोते कभी नहीं बैठना चाहिये । अुसे मुझ पर शक था न ? अुसे मुझ से तड़ाकफड़ाक जवाब तलब करना चाहिये था ? तो मैं अुसका समाधान कर देता । आवश्यक समझता तो अुस से क्षमा भी माँग लेता ।'

बरसात पुनः बरसने लगी । दो बरसात अेक साथ शुरू हुअी — अेक तो बादली और दूसरी मेरी बावली आँखों की ! अतः अशोक की क्षमा माँगने के लिये मैं चट से आगे बढ़ी ।

मुझे देखते ही वे बोले, 'माँ, अब घर चलो, अेक आदमी को जो कुछ कहना था, वह अुस ने सुन लिया !'

जल्दी जल्दी अशोक चल पडे, किंतु मैंने तेजी से सामने हो कर कहा कि 'फिरसे पानी पड़ रहा है, यह छाता —'

और मैंने छाता सामने कर दिया, वह अुन्हों ने लिया तो नहीं, पर माँ अुसे ले कर हँसती हुअी बोलीं, 'आयी हूँ, बेटा !' माँ के अुस सरल वाक्य का अर्थ कितना भयंकर था !

● ● ●

अशोक और माँ दोनों की क्षमा माँगने के लिये मैं दूसरे दिन सबेरे ही अुन के घर जाने को तैयार थी, कि डाकिया आया । मैंने सोचा कि शायद कोंकण से माँ का पत्र आया होगा । वैसे पत्र माँ का ही था, किंतु

मेरी जन्मदात्री का नहीं, अशोक की और मेरी नयी माँ का। पत्र बिल्कुल छोटा-सा था।—

'प्रिय पुष्पा,

अशोक सुखी हो सके, अिसी कारण अुस के पास से, तेरे पास से और अपनी अिस मनभाअी दुनिया से मैं बहुत दूर–दूर जा रही हूँ। अीश्वर तुम सब को सुखी रखे।

तेरी सास—
सुशीला'

अिस पत्र को पा कर मैं दौड़ती हुअी अशोक के घर पहुँची। वे भी तुरंत ही अपने पिताजी के घर, मठ में, आश्रम में, धर्मशाला में, सभी जगह माँ को खोज आये थे। कहीं भी अुस का पता न लगा। माँ ने अुन्हें भी अेक पत्र लिखा था।

'चि० अशोक,

अनेक शुभाशिष—

हरेक को सुख देने के लिये मैंने कुछ न कुछ किया, पर तुझे मैंने केवल दुख ही दिया, अतः मुझे माफ करना।

स्त्रियाँ देवियाँ हो सकती हैं, किंतु वे दुर्बल देवियाँ हैं। अुन में देहरे से बाहर निकलने का साहस ही नहीं। यह दुर्बलता झटक कर मैं घर से बाहर निकल रही हूँ, मेरी खोज न करना। पुष्पा पर नाराज़ न होना! वह भी तो अेक दुर्बल देवी ही है। प्रभाकर और प्रेमा तेरे भाअी-बहन ही हैं। और अेक बात, अपने पिताजी पर भी क्रोध न करना। अुन का कोअी और नहीं। अुन से ग़लती हुअी होगी। किंतु अुन का मन नवनीत से भी कोमल है। अुन की सेवा मेरे नसीब में न थी। अुन को भी सँभालना।

तेरी—
माँ'

पत्र पढ़ते ही मेरा रोना न रुका। तब मेरे आँसू पोंछते हुअे अशोक बोले, 'अब देवी को यों दुर्बल न बनना चाहिये!' पर तुरन्त अुन का स्वर कँपित हो गया। 'माँ तेरे लिये अेक सौगात रख गयी है।' मैं अुत्सुकता से देखने लगी तो अुन्हों ने टेबिल की ओर अिशारा किया। अुस पर सोने के कँगना, कानों के अेरन, मोहनमाला आदि सारे गहने रखे हुअे थे। अुनके पास रखी हुअी चिट्ठी अुठा कर अुन्हों ने मेरे हाथ में दे दी।—

अुस में सिर्फ़ अितना ही लिखा था—'ये मेरी लाड़ली बहू के गहने हैं, अुस का ससुराल का नाम भी 'पुष्पा' ही रखना चाहिये।'

● ● ●

१६

दा सो पं त

अुस मसूरकर के भविष्य में यह कहीं नहीं लिखा था। अुसमें तो अुस ने छाती ठोक कर लिखा था कि नयी गृहस्थी भी खूब सुख भरी होगी। पर, यहाँ तो चार महीने में ही छाती पीटने की घड़ी आ सवार हुअी हमारे अूपर!

भला बिचारे ग्रह भी मनुष्य की मूर्खता के आगे क्या करें? अपना सुख यदि कोअी दूसरे के दुख की नींव पर खड़ा करे तो वह कब डगमगा जायेगी अिसका कोअी नेम नहीं! भला पचाशी अुलटने वाले आदमी को पचीस साल की लड़की से विवाह करते हुअे पल भर तो यह सोचना चाहिये। मैं जब बाअीस तेअीस साल का था, तब मेरे गले में अगर कोअी पैंतालीस साल की औरत बाँधने लगता तो मैं दरवाज़े पर ही अुसे 'मेरी माँ' कह कर नमस्कार कर देता, और वहाँसे अितनी ज़ोर से छू मंतर होता कि लोग मुझे सवाअी रामदास ही बताते! मेरी जो गलती हुअी सो यही, अेक को कड़ुआ लगने वाला नमक कुछ दूसरे को शक्कर-सा मीठा नहीं लगता। सुशीला जैसी समझदार लड़की मिली, अिस लिये तो अपना अितना भी निभाव हो गया, वरना कोअी ताड़का पल्ले पडी होती तो दासोपंत को सन्यास लेने की शुभ घड़ी ही आ गयी होती!

पर अितनी सुंदर स्त्री मिली भी तो हमने कौनसे तारे तोड़ लिये ! अुस की मर्ज़ी के खिलाफ़ अुसे मठ में भेजा, यह भी बड़ी भारी भूल हुअी । अुस ने यदि मुझ से किसी सन्यासिनी की सेवा करने को कहा होता तो मैं भी क्या कर सकता ? तो अुस पर मैंने अितना दबाव क्यों डाला ? वह मेरी औरत थी अिसी लिये न ? औरत और मर्द अेक ही गृहस्थी की दो आँखें ! तो मैंने भेदभाव क्यों किया ? यह न सोचा कि स्त्री को भी पुरुष की भाँति ही मन होता है । अिसे यदि पुरुष भूल जाता है तो —

क्या होता है, यह साफ़ साफ़ सामने है । घर में शीघ्र ही नन्हा-मुन्ना खेलने लगे, अिसके लिये जो खटपट की वह अुल्टी बबाले जान बन गयी । बच्चा तो अलग-रहा, गाँठ की बीबी भी बेपता हो गयी ।

सुशीलाने आत्महत्त्या तो न की होगी ? सभी आत्महत्त्याओं का पुलीस को कब पता चलता है ? अुसने अगर जान दे दी होगी — तो भगवान् के आगे मैंने ही अुस की जान ली यह माना जायगा । और मैं भी कितना मूर्ख हूँ । अिस प्रकार बाबा की कृपा से अगर संतान होती हो तो विवाह के बंधन में कोअी पड़ेगा ही क्यों ? कहा है न, कि लोभ अंधा होता है । मुझे भी तो संतान का लोभ लगा था, और —.

अुस दिन अुन अख़बारों ने ' बूढ़े पतियों को चेतावनी ' के नाम से चाहे जो छापा, मेरा तो सर ही फिर गया था अुसे पढ़ कर । अतः अशोक के घर जाकर मैं जो मुँह में आया, बोल आया । अुस बात की अब जब जब याद आती है तो शरम से गड़-सा जाता हूँ । और घर आकर मैंने अुस बिचारे प्रभाकर से कितना बुरा बर्ताव किया था ! जब अुसने पूछा कि क्या हुआ है ? तो मैंने अेकदम अपना तोपखाना शुरू कर दिया । ' महायुद्ध छिड़ गया — नहीं तो गाय को गदहा पैदा हुआ — चल, रास्ता ले यहाँ से, पुनः मुँह न दिखाना । विवाह करके मैंने जो मुफ्त भोजनालय खोला था अुसमें नुकसान रहा, अतः आज से अुसे बंद कर दिया । अब आज से दासोपंत की नाटक कंपनी अेक भी खेल धर्मार्थ न करेगी । '

छिः छिः ! यह क्या अेक लड़के से बातें करने का ढंग था ! ग़रीब बिचारा प्रभाकर ! सुशीला का भाअी ही तो ठहरा ! बिना मीन मेख

किये चुपचाप चला गया। बाद में मैंने सोचा कि मुझे अिस प्रकार नहीं बोलना चाहिये था। हमारे जैसे लोगों की यहां तो भूल होती है। पहले तो आग लगने तक सोते हैं, और फिर दमकल के लिये दौड़धूप करते हैं।

सुशीला ने घर छोड़ते वक्त अशोक को लिखा वह पत्र – अुसे पढ़ कर वह चली गयी, अिस दुख से मुझे रोना आता है। अुस का अब भी मुझ पर कितना प्रेम है, यह सोच कर मेरी आँखों से आनंद के आँसू बह चले थे — मेरी क्या हालत हुअी, अिसे मैं भी नहीं समझ सका।

रात को नींद तक नहीं आती। आँखें लग भी जाय तो सपने में भी सुशीला दिखाअी देती है। कभी वह नदी में कूदती है, कभी ज़हर खाती है, कभी गले में फाँसी लगाती है, कभी शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाती है। अेक-से अनेक – कितनी डरावनी बातें दीख पड़ती हैं! अशोक, पुष्पा, प्रभाकर लगातार अुसे खोज रहे हैं, पर अुसका कहीं पता नहीं लगता। अगर वह बंबअी गयी होती तो अपनी मौसी के पास रहती, किंतु वहाँ से भी नहीं का अुत्तर आया। अिन बच्चों का धीरज न छूटे अतः मैं दिन में तो न जाने कैसे कैसे आँखों में छलाछल भरे पानी को रोके रहता हूँ। किंतु रात को सोने के समय जब प्रेमा 'गीत सुनाअिये न! जीजी के जैसा गीत सुनाअिये न?' कहकर ज़िद करती है। अरे बाबा! यदि मेरा गला गीत गाने लायक मीठा होता तो मैं अीरान की तेल कंपनी में क्लर्क बनने के बजाय बालगंधर्व[1] ही न बन जाता? और अिस लड़की को जो पसंद हैं, वे गाने मुझे आते ही कहाँ हैं? अपनी पूँजी तो सिर्फ़ दो चार भजनों की है। वे हैं —

'भज भज भवजलधिमाजिं मनुजा शिवाला'[2]

या 'दत्त गुरु – दत्त गुरु' अथवा

१ मराठी रंगभूमि के पिछले पीढ़ी के मशहूर गायक अभिनेता नारायणराव राजहंस – 'बालगंधर्व'।

२ 'भज भज भवजलधि माँझ मनुज तू कपाला।'

'सुखकर्ता दुखहर्ता वार्ता विघ्नाची'*

अिनमें से कुछ गाअूँ भी तो यह छोकरी तुरंत कानों में अुँगलियाँ लगा लेगी।

यों ही जीजी की याद करके रोते रोते प्रेमा रोज़ सो जाती है। अुस की आँखें झँपकने तक मैं अुसे बहलाता रहता हूँ — 'जीजी ज़रूर मिल जायगी हँ!' पर अुसके सोते ही मेरी आँखों से आँसू टपकने लगते हैं। किसी भूत की भाँति मैं सारे घर में घूमता हूँ, प्रत्येक जगह, प्रत्येक वस्तु सुशीला की अधिक याद दिलाती है। यहाँ अिस पर्दे के पीछे मैंने 'रास्ता बंद है' कहकर सुशीला से मज़ाक किया था, वहाँ —

सुशीला पुनः लौट आयेगी क्या?

मध्यरात्रि के अँधेरे में अपने अिस प्रश्न का मैं जब कि अुत्तर खोजता हूँ, तभी प्रेमा सपने में 'जीजी! जीजी!!' कहती अुसे पुकारती रहती है।

● ● ●

* 'दुखहर्ता सुखकर्ता विघ्न के विनायक।' (श्रीगणेशजी की मराठी आरती।)

१७

सुशीला

पुष्पा का छाता मैंने ले लिया, किंतु बरसात तुरंत ही थम जाने से वह कुछ काम न आया। घर आने तक मैं और अशोक आपस में कुछ बोले भी नहीं। किंतु बरसात की बूँदों से धुल कर बाहर की सृष्टि जैसी प्रसन्न दीखती थी, अशोक के मुख पर भी वैसा ही आनंद नाच रहा था।

पुष्पा को देख कर अुसे कितना आनंद हुआ, यह मैं समझ गयी। तब काफी दिनों से मेरे मन में घुलनेवाले अिस खयाल ने जोर पकड़ा कि मैं जो घर छोड़ कर चली जाअूँ ? तो पुष्पा अिस घर में दौड़ी आयेगी। अशोक ने मेरे लिये अपने जीवन में अँगारे पाले हैं। तो अिन अँगारों को मैं फूल नहीं बना सकती क्या ? प्रेमा अुन के पास मज़े में रहती है, तथा प्रभाकर को अशोक अपना छोटा भाअी ही समझता है। ये सब होने पर अब पुष्पा और अशोक के बीच में आने का मेरे लिये कोअी अर्थ नहीं था। अतः अशोक के वे शब्द पुनः मेरे कानों में गूँजने लगे – 'तू प्रेमा की बहन नहीं, अशोक की माँ नहीं, पिताजी की पत्नी नहीं; तू मनुष्य है, केवल मनुष्य।'

तब मैंने अपने मन की सारी विकलता अशोक के अिन शब्दों की धुन में डूबा दी। और अशोक तथा पुष्पा के नाम दो पत्र लिखे, अपने सारे गहने अुतार कर मेज़ पर रखे। तथा आनंद में सोये हुअे अशोक को खूब जी भर देख कर अुसी रात को मैं घर से निकल पड़ी।

बाहर घोर अँधेरा था, अतः मेरे पैर तो ठिठके, किंतु मन पीछे न मुड़ा। थोड़ी दूर ही गयी थी कि गस्तवाला चिल्लाता जा रहा था, मुझे चोर समझ कर यदि वह —

अतः मैं अेक फूटे घर की ओट में हो गयी। गस्तवाला आगे निकल गया तो मैं पुनः आगे चल पड़ी। रेल से जाअूँगी तो शायद पता लग जायगा, अतः अेक दो दिन पैदल चलने का ही मैंने निश्चय किया। बीच ही में अेकाध कुत्ता भूँकता तो कुछ डर लगता। पर तुरंत ही मैं फिर चलने लगती।

मैं लगभग दो तीन घंटे चली थी कि पैर दुखने लगे, वैसे सड़क काफ़ी चौड़ी थी, पर मैं किस ओर जा रही हूँ, अिसका मुझे कुछ भी पता न था। तब मैं सड़क किनारे के अेक पत्थर पर थोड़ी देर के लिये बैठ कर सुस्ताने लगी। अिस बीच मन में अेक विचार आया कि पुनः घर क्यों न लौट चलूँ? परंतु तुरन्त ही अशोक के शब्द याद आये कि 'मनुष्य लड़ने के लिये ही जन्म लेता है।' तब मैंने भी लड़ने का - जान जाने तक लड़ने का ही मन में प्रण किया। अब मुझे आसपास के अँधेरे का कोअी डर न रहा। मैं जंगल में थी, लेकिन अुस बाबा के मठ से अधिक सुरक्षित थी। अब अपनी पोटली में से अेक पुराना कपड़ा निकाल कर मैं रास्ते के अेक ओर लेट रही, अभी मेरी आँखें झपकी न झपकी अिसी बीच बैलों के गले की घंटियों का मीठा स्वर सुनाअी दिया। बड़ी सड़क से लगे हुअे किसी गाँव के छोटे रास्ते पर से अेक बैलगाड़ी आ रही थी। गाडी जैसे जैसे क़रीब आती गयी, वैसे वैसे अुसके नीचे लटकती हुअी लालटेन भी टिमटिमाती नज़र पड़ी। गाडीवाला अपने भारी स्वर में न जाने क्या गुनगुना रहा था। किंतु मुझे वह बहुत सुरीला लगा। अतः मैं अुठ कर खड़ी हो गयी।

तब अुस ने रास्ते पर कोअी खड़ा है, यह देख कर गाड़ी ठहराअी। अुस की 'कौन है?' आवाज़ सड़क के पुलिस वाले की न थी, किंतु किसी घर के मनुष्य की-सी थी।

मैंने कहा, 'अेक ग़रीब औरत'।

'कहाँ जा रही हो?'

'बम्बअी!'

'बम्बअी?' वह हँसा। 'तब तो रेलसे जाना था न —'

'टिकट को पैसे नहीं थे, दादा!' प्रसंग मनुष्य को सब पाठ पढ़ा देता है, मैं अितनी सरलता से यह सब कह सकूँगी अिसका मुझे स्वयम् विश्वास न था।

'आ, माअी! गाड़ी में बैठ जा!' वह बोला।

मैं गाड़ी में बैठ गयी तो गाड़ी चलने लगी। वह पचीस तीस मील दूर लगने वाले अेक बड़े ग्रामीण बाज़ार को जा रही थी। अेक अनाज के बोरे का सहारा ले कर मैं झोके लेने लगी। गाड़ीवान गाता जा रहा था, बीच बीच में बीड़ी भी पी लेता था। बीड़ी ख़त्म हो जाने पर अुस ने बताया कि जब वह गाड़ी पर सवार हो कर निकला तो अुस वक्त अुस के बच्चों ने कैसा शोर मचाया था। फिर अुस ने मुझ से पूछा कि 'माअी! तेरे कितने बच्चे हैं?'

'अेक!'

'कितना बड़ा है?'

'बहुत बड़ा नहीं!'

'तो अुसे छोड़ कर तू कैसे चली आयी?'

'पेट भी तो पीछे लगा है न, बाबा!'

अुस ने गर्दन हिलाअी। 'बम्बअी में क्या, मिल में काम करेगी?'

'हाँ!'

'मेरी औरत की अेक बहन भी बम्बअी में किसी मिल में काम करती है, पर अुस का पता —' अुस ने बहुत देर तक सर खुज़ाया, पर अुसे पते का पता क़तअी न चल पाया!

बैलगाड़ी की अुस दो दिन की यात्रा ने मुझे कितनी ही बातें सिखाअी। पौ फटे पूर्व की ओर अरुण फूटता तब का दृश्य कितना सुंदर होता था। घर तो मैं अिस वक्त अुठ भी पड़ती तो भी चाय की गड़बड़ीमें रहती थी। परंतु खुले जंगल में पंछियों की कलकल, गाँव के बाहर चरने जाने वाले जानवर, खेतों में काम करने वाले किसान, धूल में गुल्ली-डंडा खेलने वाले नंगे घडंगे बच्चे, सभी बातें मेरे लिये नयी थीं। मैंने सोचा, हम मध्यम वर्ग के लोग अेक कृत्रिम संसार में रहते हैं। सच्चा संसार यह है।

गाड़ीवान के साथ ही मैंने दोपहर को अेक पेड़ की छाया में मोटी रोटी खायी, अुसकी घर से साथ बाँधकर लायी हुअी वह रूखी रोटी भी कुछ कम मीठी न थी! तब मुझे हम लोगों के घर का खाने का प्रतिदिन का खटराग याद आया। शाकभाजी क्या की जाय? किस किस चीज़ को बायाँ हाथ न लगे? न जाने क्या क्या झँझट! रसोअीघर के जँजाल से बिचारी स्त्री कभी सर भी नहीं अुठा पाती।

हम कल बाज़ार के दिन ही गाँव में आ गये। गाड़ीवान को अब मंडी में जाना था। अतः मैं गाड़ी से नीचे अुतरी। अुसके अुपकार से मेरी आँखें भर आयीं। मेरे अुतरने के बाद वह बोला, 'मिल में सँभलकर काम करना; नये आदमी पट्टे वट्टे की झपट में आ जाते हैं।'

गाड़ी जब तक आँखों से ओझल नहीं हो गयी, तब तक मैं अुसकी ओर देखती ही रही। अिस गँवार गाड़ीवान की जगह यदि कोअी पढ़ालिखा मनुष्य होता तो अुसने अपनी गाड़ी में मुझे कभी न बिठाया होता। अुलटी न पूछने की बातें और मुझ से पूछी होतीं!

मैं सारे दिन गाँव में फिरती रही। बाज़ार केवल अिसी गाँव में भरता हो, अैसी कोअी बात न थी। पर मैं क्या करती? अिस गाँव में मेरा कोअी घर न था अिस लिये मैं कहीं बैठकर भी क्या करती? अतः सारे दिन घूमती फिरती ही रही।

रास्ते के अेक तरफ़ अेक बूढ़े चमार ने अपनी फटी टूटी दूकान लगा रखी थी, मैं अुसी की ओर देखती काफ़ी देर तक खड़ी रही। अुस से चप्पल का कोअी अँगूठा बनवाता, कोअी टूटी पट्टी ठीक कराता अिसमें पैसे दो पैसे

ही अुसके हाथ पड़ते थे । दादी की अिच्छा थी कि प्रभाकर को तहसील-दार या मुन्सिफ बनाया जाय — परंतु आज मेरी अिच्छा —

मन में आया – क्या, यह चमार भी अपने लड़के को तहसीलदार बनाने की न सोचता होगा ?

मंडी में बेझर के अेक ढेर के पास अेक लड़की अपने छोटे भाअी को लेकर खिला रही थी, कितनी औरतें कंडा बेच रही थीं, कितनी माथे पर टोकरी लिये फिर रही थीं । अुन टोकरियों में अनेक बोतलें थीं । अुनमें से अेक में थोड़ा नारियल का तेल होगा, दूसरी में शायद मिट्टी का तेल भरा होगा । वे नटनी-सी नाच रही थीं । अुनके हँसते हुअे चेहरों को देखकर मुझे अपने आप पर लज्जा आ गयी ।

शाम को मैं गाँव के मंदिर की ओर गयी तो रास्ते में अेक कुली बोरियों से लदी हाथगाड़ी खींचे जा रहा था । बिचारे को अिस महा मेहनत के बदले दो चार आने भी मिलते होंगे या नहीं, कौन जाने ! मैं मंदिर में घुसी तो वहाँ अेक कथाकार कथा कह रहे थे । अुन के सामने चावलों का खासा ढेर था, थाली में पैसे भी काफ़ी पड़े थे । झोंके खाती बातें बनातीं तथा घुसपुस करतीं, बहुत-सी स्त्रियाँ और थोड़े बूढ़े पुरुष अुन का पुराण सुन रहे थे । अिस बीच अुन्हों ने कथा कहते कहते कहा कि ‘ सीता राम के साथ बन में गयी, यह अुस की बड़ी भूल थी । वह यदि अयोध्या में ही आराम से रहती तो रावण अुसे भला क्यों हरण कर ले जाता ? ’ अुन के अैसा कहने पर भी सब स्त्रियों ने सर हिलाये ।

मुझे अुस कथाकार पर बड़ा क्रोध आया ।

● ● ●

बम्बअी के अनुभवों ने मेरी आँखें अच्छी तरह खोल दीं । देव, धर्म, नीति आदि के नाम हम औरतें न जाने कितनी निरर्थक बातों से अंधश्रद्धा के कारण नाहक चिपटी रहती हैं । सच्चा देव, सच्चा धर्म, सच्ची नीति, अेक ही बात में है, और वह सब लोगों को सुखी करने में, सभी लोगों के दुःख हरने में ।

पास के थोड़े पैसों से मैं किसी तरह दिन गुज़ार रही थी। चार छः दिन में पेट के लिये कुछ न कुछ काम करना ही पडेगा यह निश्चित बात थी — अतः कोअी काम न होने से मेरा मन बड़ा घबड़ा गया था।

● ● ●

अुस फेरीवाले को देख कर मैं तो वाकअी चकित रह गयी। वह वही लड़का था, सिर्फ़ अेक बार के अन्न के बदले मुझे मठ से मुक्त करानेवाला।

'कहाँ ठहरी हो?' अुसने पूछा।

'बम्बअी में!' मैंने हँसकर अुत्तर दिया।

तब मैं अकेली ही भटक रही हूँ, यह समझ कर वह मुझे बड़े आग्रह से अपने घर ले गया। वहाँ अेक गंदी और तंग कोठरी में अेक युवा लड़की अेक गंदे बिस्तरे पर बीमार पड़ी थी।

मैंने पूछा, 'यह कौन है?'

वह बोला, 'मेरी बहन!'

'मैं जैसी तुम्हारी माँ वैसी ही यह बहन! है न?' मैंने कहा तो वह हँसा।

'अिसे क्या हुआ है?'

'यह अेक मोटर के आगे गिर कर जान दे रही थी कि मैंने चट से पीछे खींच लिया। पर अुसका धक्का लगने से बुख़ार आ गया। बड़े डॉक्टर को दिखाने के लिये पैसे नहीं, और अस्पताल में जाने को यह तैयार नहीं। बीच में कभी कभी होश आता है तो कहती है, 'मुझे मार डालो!'

मैंने आँखें पोंछकर दूसरी ओर देखा तो अशोक का फोटो दिखाअी दिया। मैंने पूछा, 'यह कहाँ से आया?'

वह बोला, 'यह अिस तारा के पास था, अिस के कहने से मैंने अिस पर फ्रेम लगवा दी है।'

तो क्या, यह तारा है? अुस आश्रम की लड़की?

● ● ●

१८

अ शो क

माँ बम्बअी गयी होगी, यह ख़याल पहले ही मेरे मन में आया था, परंतु अुस की मौसी का पत्र आया कि वह यहाँ नहीं आयी। अिस कारण हम लोगों ने अुस ओर की खोज़ ख़बर ही छोड़ दी।

किंतु जैसे जैसे अेक अेक दिन गुज़रने लगा, वैसे वैसे हम लोगों की निराशा बढ़ती ही जाती थी। पिताजी को तो जैसे हाय ही खा गयी। प्रेमा के 'जीजी कब आयेगी?' अिस सवाल का जवाब देने में पुष्पा की आँखें भर आतीं और मैं तो पीठ फेर कर बात ही बदल देता था।

बातों ही बातों में चंदू ने बताया कि माँ बीच में अेक दिन बम्बअी की पूछताछ कर रही थी। सोचा, तब अुस के मन में कहीं न कहीं जाने की बात अवश्य घुल रही होगी! अुस ने व्यर्थ ही पूछताछ थोड़े ही की होगी?

● ● ●

शीघ्र ही हम सब बम्बअी आ गये। पुष्पा, मैं और प्रभाकर तीनों ने यहाँ माँ को खोजने में हद ही कर दी।

अख़बारों में विज्ञापन दिये, शहर की दक्षिणी बस्ती के सभी ज़ीने चढ़

अुतर डाले। रेल ट्रामों को खूब बारीक नज़र से देखते। जो कुछ भी संभव था, वह सभी किया। माँ की जैसी ही कोअी और औरत नज़र पड़ने पर कभी कभी धोखा भी खाते। पर माँ का पता कहीं न लगा। अब बुरी बुरी कल्पनाअें मन में आने लगीं।

● ● ●

परंतु अिस खोज़ में माँ नहीं तो भी बहुत-सी बातें मुझे देखने समझने को मिलीं। परेल में मज़दूरों की बस्ती में, मैं घर घर भटका, अिस लिये सहज ही अुन की रहन-सहन सामने आयी। वहाँ मैंने देखा किस प्रकार मनुष्य जैसे मनुष्य, जानवरों की-सी ज़िंदगी बिता रहे हैं। न सिर्फ़ जानवरों की तरह रखाये जाते हैं, बल्कि अुन के साथ बर्ताव भी जानवरों का-सा ही होता है। यह सब देख कर मेरे शरीर में रोमांच हो गया। मैं भला अबतक अिन लाखों लोगों का दुख मिटाने के बजाय कॉलेज में किताबी चर्चा, और आश्रम में महज़ पचीस अनाथ लड़कियाँ सँभाले बैठा था। अतः कॉलेज से राजीनामा देने का अब मुझे असली आनंद हुआ। मैंने सोचा, मात्र स्त्री-जाति ही नहीं बल्कि अधिकाँश मानव-जाति ही आज गुलामी में पिसी जा रही है और अिस गुलामी को नेस्त-नाबूद करना ही आज के आदर्शवादियों का प्रथम धर्म है।

कोअी भी कार्य करने के लिये मनुष्य को अपने ध्येय के पीछे पागल बन जाना चाहिये। पर वह पागलपन युग को शोभनेवाला, मानवता की प्रगति में मददगार होना चाहिये। अुस में समाज को अधिक सुखी करने की सामर्थ्य होनी चाहिये। नहीं तो कोरे पागलपन की कोअी कीमत नहीं।

● ● ●

अब मेरे विचारों को अेक नया मोड़ मिल गया था, मुझे पूजा के लिये अपेक्षित मूर्ति मिल गयी थी। परंतु माँ अभी न मिल सकी थी —

पिताजी भी प्रेमा जितने ही अधीर हो गये थे। हर रोज़ शाम को जब हम निराश लौटते तो अुनकी आँखों से आँखें मिलाने का साहस हम में से किसी को नहीं होता था। पिताजी की जब यह हालत थी, तो

प्रेमा तो बिचारी बच्ची ही ठहरी। मुझे भय हुआ कि जीजी की धुन में कहीं वे पागल न बन जायँ।

केवल भय ही नहीं हुआ, बल्कि विश्वास भी हो गया, जब कि वह नीचे मैनेजर के रूम से 'जीजी गाती है, जीजी गाती है' कहती भागती हुआी अूपर आयी — तब मुझे, पुष्पा, पिताजी, प्रभाकर सभी को लगा कि वास्तव में यह लड़की पागल हो गयी! किंतु वह हम लोगों को खींचते खींचते नीचे रेडिओ के पास ले जा कर ही मानी। रेडिओ पर प्रेमा को प्रिय गाना चल रहा था —

'धांव पाव नंदलाल बोल गोड बोला*
अंतरिंचा हा छकुल्या शांतवी अुन्हाळा!'

वास्तव में वह माँ ही गा रही थी। कृष्ण जब मथुरा चले गये, तब यशोदा को जो दुख हुआ अुसी का अुस गाने में चित्रण था। और अुस की गाते गाते 'कृष्णा — कृष्णा' यह पुकार तो बिलकुल 'प्रेमा — प्रेमा' जैसी ही प्रतीत होती थी।

रेडिओ स्टेशन की ओर जाते जाते पिताजी ड्राअिवर से कह रहे थे, 'अरे भाअी, तुम गाड़ी अितनी धीमी क्यों चलाते हो?'

वहाँ माँ बाहर आते ही अेक ओर से प्रेमाने तथा दूसरी ओर से पुष्पाने अुसे बाहों में भर लिया। तब पिताजी अत्यंत अुल्लास से बोले, 'अरे वाह! अिसे हमारे हाथ क्या लगने ही न दोगे? बाकी हमें और क्या चाहिये? खेलने को नन्हा-मुन्ना मिले तो सब भर पाया!'

अिसपर माँ आश्चर्य से देखने लगी तो पिताजी बोले, 'अरी, तुम हो कहाँ? अगले साल दादी बन जाओगी?'

अिस पर पुष्पा की ओर देखकर माँ दिल से हँसी।

आख़िर देहरे से बाहर निकली देवी देवी ही रही थी।

● ● ●

* 'धाव पाँहि नंदलाल मधुर बोल बोलो
मन की ये जलन हरो, अमृतरस घोलो।'

दो शब्द

१

'सूना मंदिर' विशेष रूप से मध्यवर्गियों के बदलते जीवन को चित्रित करने वाला अुपन्यास है। अंशिक रूप में अिसका स्वरूप पारिवारिक और अंशिक रूप में सामाजिक है। अिसे* मैंने सन् १९३९ में लिखा। अंग्रेज़ी हुकूमत के साथ ही साथ अंग्रेज़ी विद्या, विज्ञान तथा जीवनविषयक नयी मान्यताओं ने भारतीय जीवन में प्रवेश किया। शताब्दियों के पुराने दायरे का त्याग कर भारतीय समाज-जीवन का शकट अन्य मार्ग से चलने की चेष्टा करने लगा। पारलौकिक आकांक्षाओं का स्थान अैहिक आदर्शों ने ले लिया। वेदांतों के ग्रंथों में आबद्ध सामाजिक समता समाज-जीवन को छूने की कोशिश करने लगी; और, नारी न तो दासी है, न वह देवी है; बल्कि वह भी हम-सी ही अेक मानव है और अुस का भी व्यक्तित्व विकासशील है अिस बात की अनुभूति पुरुषों में नये से ही होने लगी।

सन् १९०० तक यह और अिस तरह की और भी कअी जीवन-विषयक नयी मान्यताओं में से अधिकांश वायुमंडल में ही तैर रही थीं। यह बात नहीं कि अिन कल्पनाओं को प्रत्यक्ष रूप में कार्यान्वित करनेवाले

* मराठी में 'रिकामा देव्हारा' अिस नाम से।

अेक भी महापुरुष या स्त्री का निर्माण ही नहीं हुआ था। मतलब यह कि जन साधारण ने अिन सिद्धान्तों को आम तौर से स्वीकार नहीं किया था। अैसा होना भी स्वाभाविक ही था। समाज जितना प्राचीन अुतनी ही अुस की गतिशीलता भी कम होती है। कोअी भी नयी बात बालक झट्से आत्मसात् कर सकता है; पर अुसी बात को, अुसी मात्रा में, तुरंत आत्मसात् करना वयस्क व्यक्ति के लिये संभव नहीं है। यह अनुभूति जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में पायी जाती है, अुसी तरह वह समाज-जीवन में पायी जाती है। नयी शिक्षा-प्रणाली, अनेक-विध ज्ञान-विज्ञान और पाश्चिमात्य साहित्य के प्रभावी संस्कारों की प्रतिक्रिया के रूप में जल्द ही मध्यवर्ग में नयी मानसिक क्रांति का निर्माण हुआ। नवीन विचारों के बीज बुद्धि और अंतःकरण की जड़ें तक जा पहुँचे। वहाँ पर अुन में कोंपलें फूटने लगीं और आचार के रूप में वही कोंपलें प्रकट रूप धारण करने लगीं।

सन् १९२५ के युग का यही स्वरूप था। सामाजिक सुधार के नाम से पहचाने जानेवाली कअी बातों को अिस कालखंडमें मध्यवर्ग ने अपनाया। फलस्वरूप, अिस के अनन्तर के कुछ ही वर्षों में कअी पारिवारिक अेवं सामाजिक संघर्ष स्पष्ट रूप से लक्षित होने लगे; और दो पीढ़ियों की जीवन की मान्यताअें तथा श्रद्धा में प्रतीत होनेवाला अन्तर उत्तरोत्तर सुस्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा। सामाजिक परिवर्तन की अिस पार्श्वभूमि को दृष्टिगत रखते हुअे अिस अुपन्यास को पढ़ने पर अुस में वर्णित – बाह्यतः सूक्ष्म लेकिन अंतरंग की दृष्टि से विस्फोटक – कअी प्रसंगों, संघर्षों और समस्याओं का हल सुगमता से मिल जायगा।

२

अिस अुपन्यास में दो नायक हैं – दासोपंत और अशोक। अिन दोनों के प्रति लेखक के दिल में प्रेम है। दोनों भी सहृदय हैं, सज्जन हैं। अुन के अपने श्रद्धास्थान और जीवनविषयक मान्यताअें संपूर्णतः विभिन्न होने के कारण पितापुत्र का संबंध होने पर भी वे दोनों अेक दूसरे के विरोधक के रूप में अिस अुपन्यास में दिखाअी देते हैं। दासोपंत अपनी अुम्र से काफी छोटी सुशीला के साथ ब्याह करता है; लेकिन कुछ पहले के ज़माने के अैसे

विवाहों में जिस बाजारू वृत्ति का प्रदर्शन हुआ करता था, अुस से वह सर्वथा आलिप्त है। साथ ही, वह वत्सलता की भूख के कारण संपूर्णतः अतृप्त अेक बदनसीब, वयस्क व्यक्ति है। और अुस भूख की तृप्ति के लिये विवाह के अतिरिक्त अन्य कोअी मार्ग अुपलब्ध न होने के कारण अुसी मार्ग की वह शरण लेता है। वह सिर्फ कामुक या कठोर-हृदय व्यक्ति नहीं है। अुस की प्रामाणिक धारणा है कि अिस विषम विवाह में सुशीला पर अुसने किसी तरह की ज़बर्दस्ती नहीं की है। वस्तुतः अैसा मानना दासोपंत की कोरी आत्मवंचना है! लेकिन अिस तरह की आत्मवंचना मानवीय मनोवृत्ति का अेक अविभाज्य अंग है। देशभक्तों से लेकर कलाकार तक, सभी के द्वारा अिसी मानवी स्वभाव-विशेष का सर्वत्र और निरंतर प्रदर्शन हो रहा है; तब बेचारे दासोपंत को ही हम अपराधी साबित क्यों करें! दूसरों को दुख देकर प्राप्त होनेवाले सुख का हम पलभर भी अुपभोग नहीं करेंगे अिस सिद्धान्त का संपूर्ण रूप से पालन करना अिस संसार में अत्यंत दुश्कर है, और अिसी से, दासोपंत के चरित्र का अेक पहलू सहानुभूति के लिये अपात्र तो दूसरा पहलू अत्यंत करुण प्रतीत होता है।

सुशीला अेक दृष्टि से जाग्रत पर दूसरी दृष्टि से परंपरागत सामाजिक अेवं पारिवारिक निष्ठाओं से आबद्ध नारी है! कअी बार हमें आभास होता है कि पुष्पा नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करनेवाली युवति है; पर वास्तव में वह तो अेक अल्हड़ बाला है। अुस के गिर्द का कल्पना-रम्यता का कवच अब तक अटूट है। वह कवच पहले पहल चटक जाता है अशोक पर लगाये गये अिल्ज़ाम के कारण! वास्तव में यह प्रसंग पुष्पा के प्रेम की कसौटी है; पर दुर्भाग्य से अिस कसौटी में वह असफल सिद्ध होती है! परंपरागत पुराने विचारों से आबद्ध पूर्वीय देश की नारी, और नयी विचारधारा से प्रभावित पाश्चिमी स्त्री — अिन दोनों की सीमा-रेखा के बीच खड़ी और जीवन के परस्पर विरोधी मापदंडों के कारण सकपकायी भारतीय नारी का मन अुस के रूप में प्रकट हुआ है!

यद्यपि अिस अुपन्यास को लिखे बीस साल से ज्यादा अवधि हो चुकी है, तब भी, हमारे समाज की कअी पुष्पा अबतक अुसी स्थान पर खड़ी मेरी आँखों को दिखाअी देती हैं।

३

'सूना मंदिर' लिखते समय रह-रहकर अेक ही चिन्ह मेरी आँखों के सामने अविचल भाव से अुपस्थित था। अेक सुविशाल और सुंदर देहरा फूलों से ढँक-सा गया है। हजारों हाथ — नर और नारियों के — अुस देहरे पर पुष्प समर्पण करने के लिये अेक दूसरे से होड़ लगा रहे हैं। लेकिन अुन में से किसी को भी अिस बात का तनिक ज्ञान नहीं है कि जिस की अर्चना के हेतु वे सब अेकत्रित हुअे हैं, वह मूर्ति ही देहरे में नहीं है, अुसे किसी ने देहरे से अुठाकर न जाने कब, बाहर फेंक दिया है। और अुन अंध-भक्तों को न अिस बात का ज्ञान है कि अुसी मूर्ति को अपने पैरों से रौंदते, कुचलते हुअे वे सब पूजा के लिये अधीरता के साथ आगे बढ़ रहे हैं। हमारी असीम सहानुभूति का केंद्र-बिंदु बनी अिस अुपन्यास की नायिका सुशीला से लेकर हमारी घृणा का विषय बने लुंगी बाबा तक कोअी भी पात्र लीजिये; अुसके चरित्र-चित्रण में, समाज में होने वाली सूने देहरों की — सूने मंदिरों की — अर्चना की प्रतिछाया ही हमें दिखाअी देगी।

४

अिस अुपन्यास में कालिज के प्रिन्सिपल जैसे कम महत्त्वपूर्ण पात्र की ओर भी दृष्टिपात करने पर दिखाअी देगा कि अुन के भी चरित्र-चित्रण में यही वास्तविकता मैंने निर्दिष्ट की है। अशोक पर लगाया अभियोग संपूर्णतया सत्य है अिस बात का विश्वास कर लेने के पहले ही प्रिन्सिपल जैसे स्वभावतः सज्जन, और गुरु अेवं सहयोगी अिस दोहरे रिश्ते से अशोक को चाहने वाले समाज के अेक प्रतिष्ठित व्यक्ति अुस से त्यागपत्र की माँग करते हैं। प्रिन्सिपल के सामने तो बस अेक ही आदर्श है। 'संस्था सर्वप्रथम है, संस्था सर्वोपरि है, संस्था जीवित रहनी चाहिये।' कोअी भी ख्याति-प्राप्त संस्था किसी दशा में समाज का कोप भाजन नहीं बनना चाहती। फिर अुसे — समाज को — प्रसन्न रखने के लिये कभी कभी सत्य से विमुख क्यों न होना पड़े या मानवता का गला क्यों न घोटना पड़े। संस्था को अुस की कोअी परवाह नहीं। संकट कालीन अवसरों पर अपनाये जाने वाले दृष्टिकोन को मानवीय मूल्यों की कसौटी पर अच्छी

तरह कस कर ही अपनाना चाहिये। पैसा, प्रतिष्ठा, पांडित्य आदि व्यावहारिक मापदंड जीवन का निकष नहीं बन सकते, अिन बातों को प्रिन्सिपल साहब जैसे पंडित व्यक्ति आसानी से भूल जाते हैं। अिन्हीं प्रिन्सिपल साहब ने बी० ए० की कक्षा में 'अथेलो' पढ़ाते हुअे कअी बार छात्रों की आँखें आर्द्र कर दी होंगी। अेक दुर्जन व्यक्ति अेक हाथ रुमाल को बदल कर अेक साध्वी नारी के पतिव्रता धर्म के प्रति अुस के पति के दिल में किस तरह दारुण संदेह की सृष्टि करता है, अिस घटना का अतीव सहृदयता के साथ वर्णन करते हुअे अुन की वक्तृता परम सीमा को पहुँची होगी; पर अशोक पर अिल्जाम लगाया जाते ही अुन की ज़बान को जैसे लक़वा मार जाता है। मानो अपने बर्ताव के द्वारा वे यही दिखाना चाहते हैं कि पांडित्य सिर्फ़ अुक्ति के लिये होता है; कृति के लिये नहीं। प्रिन्सिपल महाशय पल भर भी यह नहीं सोचते कि जिस संस्था की पवित्रता की रक्षा के लिये, वे अशोक को संदिग्ध परिस्थिति का भी लाभ अुठाने नहीं देते अुस संस्था की पवित्रता क्या निरंतर वैसी ही रह सकती है? और क्या, पवित्रता का आडंबर फैलाने जैसा अुस संस्था का अंतरंग वास्तव में अुदात्त है? प्रतिष्ठित संस्थाओं का निर्माण आदर्शवादी महात्माओं की स्फूर्ति और अुन के महान् त्याग के कारण ही होता है अिस में कोअी संदेह नहीं। पर जिस तरह अेक अेक पाअी सँजो कर बड़ी जायदाद बनानेवाले पिता के गुण, गुलछर्रे अुड़ाने वाले अुन के मुफ्तखोर पुत्र में नहीं पाये जाते, अुसी तरह किसी भी संस्था के संस्थापकों का आदर्शवाद अुस संस्था का संचालन करनेवाली अगली पीढ़ी के आचरण में पूर्ण रूप से नहीं अुतरता। संस्था का अुज्ज्वल आदर्शवाद अधिक-से अधिक अेक पीढ़ी तक ही टिका रहता है। भावी पीढ़ी में, अुस आदर्शवाद में अवश्य कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाता है।

अिन संस्थाओं का स्वरूप बड़ी जायदाद वाले मंदिरों के समान हो जाता है। सार्वजनिक जीवन में अग्रीम स्थान में रहने वाली संस्थाओं का विगत तीन पीढ़िओं के अितिहास का यदि अध्ययन किया जाय तो पहली पीढ़ी के आदर्श की पताका तीसरी पीढ़ी के लिये लंगोट के अुपयोग में लायी गयी हमें दिखाअी देती है! राष्ट्र की अुन्नति करना हो तो नयी पीढ़ी

को सुसंस्कारों से युक्त करना होगा; अिस आदर्श से प्रेरित होकर स्थापित की गयी शिक्षा संस्थाओं को आज क्लर्क निर्माण करने वाले कारखानों का रूप प्राप्त हो चुका है। वनराज के स्वच्छंद विहार के लिये अुपयुक्त वन-प्रदेश भेड़-बकरियाँ बाँधने के स्थान में बदल जाय अिस से बढ़कर और दुर्भाग्य ही क्या हो सकता है! अपनी अिस दुर्बलता को छिपाने के लिये 'संस्था सर्वोपरि है। वह जीवित रहनी चाहिये!' यह नारा आगे चलकर बहुत अुपयोगी सिद्ध हो सकता है, अिस बात को संस्थाओं के संचालक अच्छी तरह जानते हैं; लेकिन वे भूलते हैं कि किसी निर्जीव संस्था के चिरजीवन की अपेक्षा सजीव संस्था की अपमृत्यु कहीं श्रेष्ठ होती है। अैसी मृत्यु चेतना की दिव्य ज्योति को अमर रखते हुअे, समाज को अुन्नति की ओर अग्रसर होने का संदेश देती है। अपने प्रधान आदर्श से च्युत होने वाली और निरंतर अेक ही दायरे में फँसी रहने वाली अिन संस्थाओं में शीघ्र ही, स्वाभाविक रूप से, दो तरह के लोग प्रवेश कर लेते हैं। अेक तो अवसर की ताक में रहने वाले और दूसरे स्वार्थलोलुप! प्रजातंत्र की दुहाअी देते हुअे अैसे दांभिक व्यक्ति संस्थाओं के अिनेगिने, आदर्श, निष्ठावान सेवकों को अपनी मुट्ठी में कर लेते हैं। बिना अपना गिरोह बनाये डाकुओं का काम चल नहीं सकता और अिस के विपरीत, तपस्वी को अेकान्त ही में ध्यान लगाना अधिक पसंद आता है। अिस नियम के अनुसार अैसी संस्थाओं में स्वार्थलोलुप व्यक्तियों के दल का पलड़ा भारी हो जाता है और चंद सज्जन व्यक्ति संख्याधिक्य कम हो जाने के कारण अिस गुट के द्वारा लीलया पराभूत हो जाते हैं। अुदाहरण स्वरूप, शिक्षाप्रसार के हेतु निकाली कोअी पाठशाला, समाजसेवा के हेतु खोला गया आश्रम, राष्ट्रीय जागृति के लिये निकाला गया समाचार-पत्र — किसी भी संस्था को लीजिये। अुसका अुल्का के समान तेजस्वी प्रारंभिक आविष्कार समाप्त हो चुका कि अुसे पाषाण में बदलते देरी नहीं लगती। लेकिन, अशोक से प्रेम रखने वाले अुसके वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध प्रिन्सिपल साहब अिस कटु सत्य से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। पत्थर की पूजा करने वाले अपढ़, वन्य मनुष्य के भीरु भक्ति-भाव को मूर्तिपूजक की श्रद्धा मानना गलत होगा। वह तो जिसने जीवन में सत्य, सौंदर्य अेवं मांगल्य का साक्षात्कार किया है अैसे बुद्धिमान व्यक्ति की भावना का स्वाभाविक

आविष्कार है, अिसे यदि प्रिन्सिपल साहब जानते तो क्षणार्ध में वे मूर्तिपूजक से मूर्तिभंजक बन जाते और फटे जीर्ण वस्त्रों का जिस तरह हम त्याग कर देते हैं, अुसी तरह जीर्ण, निरुपयोगी संस्था का त्याग करना ही समाज की भलाअी की दृष्टि से अधिक श्रेयस्कर है, अिस बात की यथार्थता का स्वीकार करते! लेकिन आज की दुनिया में अैसी घटनाअें नहीं घटतीं। हमारे समाज में अैसे तेजस्वी दृश्य प्रायः दिखाअी नहीं देते। हम तो अब तक आगामी कल के देवता की अपेक्षा विगत कल के पत्थर पर ही पुष्प समर्पण करने में – अुस की अर्चना करने में – अपने आप को कृतकृत्य मानते हैं!

५

संभव है कि अुपन्यास पढ़ने वाले आजकल के पाठकों की दृष्टि में तारा का महत्त्व कथा-वस्तु की मध्यवर्ति घटना के विकास में सहायक अेक सूत्र, अिस से अधिक नहीं हो सकता। लेकिन मेरी आँखों के सामने जो तारा खड़ी थी, अुस की आँखों से ढुलकने वाले आँसुओं की अेक अेक बूँद से अुत्पीड़ित नारी-जाति की मूक व्यथाओं के अनंत विश्व मैं देख रहा था!

अेक अभागिनी, अनाथ, अबला के रूप में तारा आश्रम में आती है। वहाँ अुसे अशोक दिखाअी देता है – अुस का भगवान ही अुसे दिखाअी देता है। अब तक स्त्री की ओर, अुपभोग योग्य सुंदर पुतली के दृष्टि से देखने वाले कअी पुरुषों से वह अच्छी तरह परिचित थी। लेकिन नारी को सच्चे दिल से देवी मानने वाला तो अशोक ही पुष्पा के जीवन में पहला पुरुष है। अिसी से अुस के दिल में अशोक के प्रति अुत्कट भक्तिभाव अुत्पन्न होता है। यह भक्ति अेक अतृप्त युवा मन की भक्ति होने के कारण अनजाने ही यदि वह प्यार के रूप में प्रकट हो जाय तो हमें विस्मित नहीं होना चाहिये। तारा अिस बात से अनभिज्ञ नहीं थी कि अिस जीवन में अशोक का अधिकारपूर्ण सहवास वह प्राप्त नहीं कर सकती। तब भी, आत्मीयता के अभाव में छटपटाने वाले और प्यार के स्पर्श तक से वंचित रह जाने वाले अुस के अतृप्त मन को यह विचार कब तक वश में रख सकता था? प्रेम के कराल पंथ पर फैले काँटे कँकड हमारी आँखों को दिखाअी

नहीं देते और अिसी से कहते हैं कि प्रेम अंधा होता है ! सिर्फ आत्मिक संतोष के लिये और कभी न भेजने के लिये तारा अशोक के नाम प्रेम-पत्र लिखती है। शुरू शुरू में वह नहीं चाहती कि अुन प्रेम-पत्रों को अशोक कभी देखे। खेल में गुड्डागुड़िया का ब्याह रचाते हुअे अनजान बालक जिस तरह यथार्थ के विवाह समारोह जैसे अुस में लीन हो जाते हैं, वैसी ही, तारा की आत्मतृप्ति की यह बालिश पर काव्यमय कृति है। संभव है कि अशोक से, दूर ही से क्यों न हो, प्यार करते हुअे पुराणों में वर्णित कुब्जा की कहानी का अुसे विस्मरण हो गया हो। पर क्या, अुस कुरूप प्रणयिनी का श्रीकृष्ण के प्रति राधा और रुक्मिणी अितना ही अुत्कट प्रेम नहीं था ?

लेकिन, वैवाहिक पवित्रता की अर्चना का अहर्निश आडंबर फैलाने वाला समाज अैसे निष्पाप परंतु लोकविलक्षण प्रेम की ओर प्रायः सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखता। वह तो अैसे प्रेम की महापातकों में गणना करता है ! प्रेम करना यौवन का जन्मसिद्ध अधिकार है अिस बात का ज्ञानवयस्क समाज-पुरुष को यदा कदा ही होता है। आश्रम जैसी संस्थाओं का संचालन करने वाले सज्जनों की प्रायः यही धारणा होती है कि वहाँ आश्रय के लिये आने वाली लड़कियाँ दिनरात शोकसूचक चेहरे से रहे और अुदरंभरण की कोअी विद्या या कला प्राप्त करने के अतिरिक्त किसी विषय का विचार तक अपने मन में आने न दे। अिसमें संदेह नहीं कि अिन में से थोड़े लोग कुछ अंश में भूत-दया से प्रेरित पाये जाते हैं। लेकिन दया का अर्थ न्याय तो नहीं होता ! दया स्वाभाविक रूप से ही दुर्बल होती है और न्याय में निरंतर वीरवृत्ति पायी जाती है। दया को समाज के सभी संकेत — वे कितने क्यों न मूर्खता पूर्ण या राक्षसी हों — स्वीकार करने पड़ते हैं; लेकिन, दलित-दुर्बलों का बलिदान चाहने वाली अघोर शक्ति के विरुद्ध हथियार उठाना यही न्याय का जीवन-हेतु है !

तारा के मन में, अेकान्त में, अशोक के बारे में अुठने वाले विचारों का परिस्फोट करने वाला अेक पत्र चिंतोपंत के षड्यंत्र से कालिज की कार्यकारिणी समिती के सामने प्रस्तुत किया जाता है। दुनिया तो यही मानती है कि अैसी संस्थाओं की कार्यकारिणी समितियों में समाज के संपन्न अेवं सुबुद्ध व्यक्ति ही ज्यादा पाये जाते हैं। पर अिन्हीं बुद्धिमानों में

से अेक भी महाभाग तारा की ओर सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देख सकता। तारा के अुस पत्र को अुस के व्यभिचार का ज्वलन्त प्रमाण मान कर वे सभी नीतिज्ञ अुस पर और अशोक पर भी आग बरसाते हैं! प्रोफ़ेसर के नाते अुन में से कअीओं का मनोविज्ञान से निकट परिचय होगा, डॉक्टर होने की वजह से अुन से कअीओंने स्त्री-जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया होगा। 'मेघदूत' से लेकर १९५६ तक के प्रेमकाव्यों का सरस अंश अुन में से कअीओं को कंठस्थ हो गया होगा; लेकिन तारा और अशोक को क्षणार्ध में अपराधी सिद्ध करते हुअे वही अुन की रसिकता, अुन का ज्ञान, अनुभव, ये सभी सहसा न जाने कहाँ विलुप्त हो जाते हैं! यही तो अवनत समाज का दुर्भाग्य है। अुस की बुद्धि और भावना अिन दोनों के बीच अेक गगनचुंबी दीवार खड़ी हो जाती है। अुस के फलस्वरूप वह किसी भी विषय पर पांडित्यपूर्ण वादविवाद तो सुगमता से कर सकता है पर अुसके अनुसार आचरण करने की सामर्थ्य वह प्रकट नहीं कर सकता।

६

बाह्यतः अैसा समाज सुसंस्कृत प्रतीत होता है पर जीवित संस्कृति के लक्षणों का — जिन्हें अपनाने से समाज का निम्नस्तर तक सुखी हो सके अैसे अुपायों का अवलंबन करना — समाज के अिन नेताओं में अभाव ही पाया जाता है। अैसे अवसर पर गीता के 'ततो युद्धाय युज्यस्व' अिन तीन शब्दों पर ठीक तीन घंटे सुंदर प्रवचन सुनाने के बाद सहसा सभा-भवन में साँप निकलने के कारण श्रोताओं में कुछ खलबली मच जाने से, सबसे पहले भाग निकलने वाले किसी पंडित का मुझे स्मरण हो आता है! हमारा गांधीवाद, हमारा समाजवाद, हमारा स्वातंत्र्यप्रेम, हमारा सामाजिक सुधार-प्रेम, भारतीय संस्कृति के प्रति हमारा अभिमान, क्रांतिगीतों का जयगान किसी को भी लीजिये, पांडित्य के प्रदर्शन को ही हम अुसका निकष मानते हैं। अनुभूति या विचार के प्रदर्शन को कदाचित् ही प्राधान्य दिया जाता है और अिसी से बीस बीस सदियों की, जंग चढ़ी, अनेकविध शृंखलाअें हमारे पैरों में अब भी झनझना रही हैं।

जिस समाज की दशा अर्धांगवायु से पीड़ित रोगी की-सी हो जाती है, वह क्रांति के पथ पर कैसे अग्रसर हो सकता है ? अुस क्रांति के स्वरूप से हमें कोअी मतलब नहीं। अैहिक सुख को ही जन-साधारण के जीवन का मुख्य आदर्श मान कर हम किसी विषय की गहराअी तक पहुँचना ही नहीं चाहते। परमात्मा और परलोक अिनके अस्तित्व पर आधारित जीर्णात्मा नीति-कल्पनाओं की मृग मरीचिका के पीछे दौड़ने में ही हमारे सामाजिक मन को अब तक संतोष प्राप्त होता है! सामाजिक सुख मानव का साध्य है। सद्‌गुणों का संवर्धन अुस आदर्श का अेक साधन मात्र है। पर साध्य साधन की अिस गड़बड़ी में हिंदु-समाज ने विगत दो सहस्र साल में करोड़ों नर-नारियों पर अनन्वित अत्याचार किये हैं। जन-साधारण के जीवन की समस्या मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो यह नहीं है। वह तो सुख की प्राप्ति के लिये लालायित है। जनता के जीवन के गिर्द नीति, या आतंक की कृत्रिम दीवारों का निर्माण कर अुसे जीवन के सुखों से वंचित कर देने वाला समाज — यह कार्य वह किसी सद्‌हेतु से प्रेरित हो कर या अन्य किसी आकर्षक नाम की ओट में क्यों न करता हो, कदापि समाज कहलाने के योग्य नहीं है।

७

स्वाधीनता प्राप्ति के अनन्तर भारतीय जनता अपने अुत्थान के लिये प्रयत्नशील है। सोचता हूँ कि अिस अुपन्यास के — सुशीला, अशोक, पुष्पा, तारा आदि — पात्रों को वर्तमान युग की पार्श्वभूमि पर चित्रित कर, मध्यवर्ग की समस्याओं को नये रूप में पाठकों के सम्मुख अुपस्थित करूँ। यदि मेरे अिस संकल्प की पूर्ति हो सकी तो पाठकों को मैं आसानी से बता सकूँगा कि विगत बीस वर्षों में हमारे समाज ने क्या क्या पाया है और क्या क्या खो दिया!

२०-९-५६ वि. स. खांडेकर